श्रीकृष्ण-सन्देश
वर्ष : ६
अंक : ६

निगमामृत

[पृथ्वी-सूक्त : अथर्ववेद, १२ काण्ड]

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते
भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु
मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

तेरे ऊपर वसुन्धरे ! मैं जब करता होऊँ विचरण,
पूर्वोत्तर-दक्षिण-पश्चिम दिक् करें मुझे नित सुख वितरण।
तेरे भुवनमध्य आश्रय ले स्वथ सुखी हो मेरा तन,
सदा समुन्नतिशील बनूँ मैं हो न कभी मम अधःपतन ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा
मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्
परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

आगे-पीछे ऊपर-नीचेसे भी मुझपर हो न प्रहार;
माँ ! कल्याणकारिणी हो तू निज करुणाका करे प्रसार।
मेरा पता न पाये हिंसक चोर लुटेरे या बटमार;
दूर भगा दे हत्यारोंको हो न कहीं भीषण संहार ॥

०

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य
एवं संस्कृति-प्रधान
मासिक पत्र
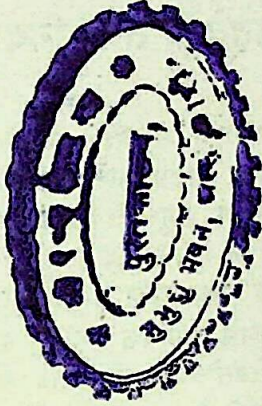
प्रवर्तक
पुण्यश्लोक जुगलकिशोर बिरला

वर्ष : ९ अङ्क : ६
जनवरी, १९७४
श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८

वार्षिक : ७ रु०
आजीवन : १५१ रु०

प्रकाशक
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा
दूरभाष : ३३८

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

● नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छांट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख बिना मांगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयोंपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख 'सम्पादक' 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के० ३०/४० घासीटोला वाराणसीके पतेपर भेजें।

● 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चन्देमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनि-आर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

● विज्ञापन : इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता।
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

प्रत्यक्ष-दर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

★

यहाँ निर्माण कार्यमें द्रुतगतिको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वैसे वातावरण भी बड़ा सुन्दर और पवित्र बना है, अतएव प्रभुके चरणोंकी ओर मन स्वाभाविक ही खिचता है।

गीता-जयन्ती ; ६१-२-'७३ — विजया राजे सिंधिया
ग्वालियर (म० प्र०)

आज परिवार-सहित भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिके दर्शन करनेका सौभाग्य मिला और बड़ी प्रसन्नता हुई।

महेन्द्रसिंह, आई० पी० एस०,
६-१२-'७३ — डी० आई० जी० पुलिस, यू० पी०
एन० ई० रेलवे, गोरखपुर

मुझे यहां पुण्य-स्थल देखकर हार्दिक-प्रसन्नता हुई। मैं आशा करता हूँ कि यह स्थान दिनोंदिन उन्नति तथा अध्यात्म का प्रदर्शन करता रहेगा।

प्रभुनारायण श्रीवास्तव
कार्यालय महालेखाकार,
इलाहाबाद

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर श्रीकेशवदेवजीका मन्दिर बहुत ही सुन्दर है। इस स्थानकी स्मृतिमें जो नया मन्दिर बनानेका उद्देश्य है, भगवान्से प्रार्थना है कि वह शीघ्र पूरा हो, जिससे हिन्दू-धर्म व जातिका उत्थान हो।

डा० गोपालरंजन,
रुड़की विश्वविद्यालय,
रुड़की (उ० प्र०)

This is one of the most peaceful place.

(Proof. MR. & MRS. Chaklader
Vancouver (Canada)

We are very impressed with the Birthplace of Lord Krishna and pray to Almighty that the organisation get strength to complete their venture to preserve Hinduism.

D. S. Singh Pravin
Reserviour Hills
Durban (S. Africa)

Shri Rakesh Kumar Goswami and Srimati Goswami of Nathdwara visited this sacred place today. They have highly impressed by the neatness and care of this famous place.

Rakesh Goswami
Rajeswari Goswami
Motimahal, Nathdwara
(Rajasthan)

It is a great pleasure to see how beautifully the birthplace of Lord Shri Krishna has been kept and has become a tourist attraction of Mathura.

We wish that the Bhagwat Bhawan will also be built soon for the benefit of your people.

Lakshmi Shanker (Singer)
Kartick Kumar (Sitar Vadak)
Vasanti Mhagosekar (Harmonium)
5, Kumar Apts.
81A, Linking Rd.
Bombay 400054

We–two Christian Ashramvasee were happy to visit Krishna's Birthplace and to witness devotion of so many people and their trust in the Lord. May the love of God touch all who come here.

Sisters Vandana & Ishpriya
Christa Prem Sewa Ashram,
Poona–5.

My wife and self are happy to visit the birthplace of Lord Krishna and pleased to see lot of improvements allround dur to the noble donations of philantheropists who have their trust in the Lord. My it flourish further.

R. S. Dutt
I. G. Police Meghalaya
Shillong

अनुक्रम

●

मासिक व्रत-पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०३० माघ शुक्ल प्रतिपद् गुरुवार २४-१-'७४ से फाल्गुन कृष्ण अमावास्या २२-२-'७४ तक]

जनवरी : १९७४ ई०

दिनाङ्क	वार	व्रत-पर्व
२६	शनिवार	भारतीय गणतन्त्र-दिवस।
२७	रविवार	वैनायकी गणेशचतुर्थी-व्रत।
२८	सोमवार	वसन्तपञ्चमी; श्रीपञ्चमी।
३०	बुधवार	रथ-सप्तमी, अचलासप्तमी, गांधी-निर्वाण-दिवस।

फरवरी : १९७४ ई०

दिनाङ्क	वार	व्रत-पर्व
३	रविवार	जया एकादशी व्रत, सबके लिए।
४	सोमवार	प्रदोषव्रत, भीष्मद्वादशी (भीष्मनिर्वाण-दिवस)।
६	बुधवार	पूर्णिमा-व्रत, माघस्नान-समाप्ति।
१०	रविवार	सङ्कष्टी गणेश-चतुर्थी-व्रत।
१२	मङ्गलवार	कुम्भ-संक्रान्ति।
१४	गुरुवार	सीताष्टमी।
१७	रविवार	विजया एकादशी-व्रत, सबके लिए।
१९	मङ्गलवार	भौम-प्रदोष-व्रत।
२०	बुधवार	मासशिवरात्रि-व्रत।
२१	गुरुवार	अमावास्या, श्राद्धके लिए, दर्श।
२२	शुक्रवार	,, स्नान-दानके लिए।
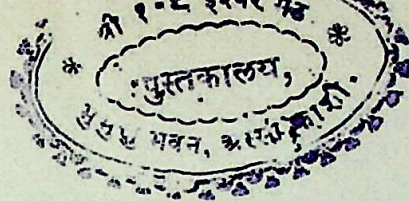
●

वर्ष : ९] मथुरा : जनवरी, १९७४ [अङ्क : ६

चंचल मन आत्मसंस्थ कैसे करें ?

श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन, अब चंचल मनकी किस तरह आत्मामें समाधि लगानी चाहिए, यह सुनो। संकल्पसे उत्पन्न सभी प्रकारकी कामनाओं अर्थात् वासनाओंको लेशमात्र भी शेष न रखते हुए मनसे ही सभी इन्द्रियोंको चारों ओरसे रोक लो, संयत कर लो। फिर धैर्ययुक्त बुद्धिसे धीरे-धीरे, सहसा नहीं, शान्त होते जाओ और मनको आत्मामें स्थिर कर लो। 'सब कुछ आत्मा ही है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं' इस प्रकार ध्यान करते हुए आत्मामें उसे अचल करो और कोई भी विचार मनमें मत लाओ (मनकी समाधि लगानेका विस्तृत वर्णन रथकी उपमासे कठोपनिषद् १.३.३ में द्रष्टव्य है)। इस तरह मनको आत्मसंस्थ या आत्मनिष्ठ करनेके लिए प्रवृत्त पुरुषका कर्तव्य है कि स्वभावदोषसे अत्यन्त चञ्चल, अतएव अस्थिर मन जिस-जिस विषयके निमित्त बाहर जाता है, उस-उस शब्दादिविषयरूप निमित्तमें ही पहले उसे रोक लो और फिर उस निमित्त-को यथार्थतत्त्व-निरूपण द्वारा आभासमात्र दिखलाकर वैराग्यभावनासे मनको आत्माके ही स्वाधीन कर दो। इस प्रकार योगाभ्यास करनेसे योगीका मन आत्मामें शान्त और स्थिर हो जाता है। अर्जुन, ऐसा इसलिए करना पड़ता है कि शान्तचित्त, रजोरहित, निष्पाप और ब्रह्मभूत या जीवन्मुक्त योगी ही, जिसे 'यह सब कुछ ब्रह्म है' ऐसा निश्चय है, निरति-

श्रय उत्तम सुख पाता है। इस प्रकार निरन्तर योगाभ्यास करनेवाला, योगान्तरायवर्जित योगी पापोंसे छूटकर अनायास ब्रह्मसंयोगसे प्राप्त होनेवाले अन्तविहीन नित्यसुखका आनन्दसे उपभोग करता है।

अब भगवान् इस योगका फल बतलाते हुए कहते हैं कि अर्जुन, इस तरह जिसका आत्मा योगयुक्त हो गया है अर्थात् जो समाहितचित्त है, वह सब भूतोंमें अपने आत्माको देखता है और अपने आत्मामें सब भूतोंको देखता है। उसकी सर्वत्र समदृष्टि हो जाती है। ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियोंको आत्मामें एकताप्राप्त देखता है। इस तरह आत्मैकत्व-दर्शनका फल अत्यन्त महान् बताया गया है। जो सबके आत्मा मुझ वासुदेवको सर्वत्र सब भूतोंमें और सब भूतोंको मुझ सर्वात्मामें देखता है, उससे मैं कभी नहीं बिछुड़ता और न वह मुझसे कभी बिछुड़ता है। कारण तब दोनोंकी एकात्मता बन जाती है। जो एकत्वबुद्धि अर्थात् सर्वभूता-त्मैक्यबुद्धि मनमें रखकर प्राणियोंमें स्थित मुझ परमेश्वरको भजता है, वह पूर्णज्ञानी योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मेरे वैष्णवपदमें ही प्रतिष्ठित रहता है। वह नित्यमुक्त ही है। उसका मोक्षसुख कोई रोक नहीं सकता। अर्जुन, सुख हो या दुःख, अपने समान औरोंको भी हुआ करता है, इस प्रकार आत्मौपम्यदृष्टिसे जो सर्वत्र देखने लगता है, किसीके प्रतिकूल आचरण नहीं करता, वह अहिंसक सम्यक्दर्शननिष्ठ योगी सभी योगियोंमें श्रेष्ठतम माना जाता है।

अर्जुनने कहा : मधुसूदन, आपने यह जो समत्वभावरूप योग बतलाया, मैं नहीं देखता कि मनकी चञ्चलता के कारण वह अचलस्थिति प्राप्त कर सकेगा। कारण हे कृष्ण, भक्तोंके पापादि दोषोंका कर्षण करनेवाले प्रभो! यह मन केवल चञ्चल ही है, ऐसी बात नहीं। यह शरीर और इन्द्रियोंको भी परवश कर देता है। यह किसीके काबूमें नहीं आता, साथ ही बड़ा दृढ़ है—गोहकी तरह अच्छेद्य है। ऐसे मनका निरोध करना मैं वायुकी तरह दुष्कर मानता हूँ। तब इसका कैसे निग्रह करूँ?

श्रीभगवान्ने कहा : अर्जुन, तुम जैसा कहते हो, निस्सन्देह यह मन कठिनाईसे वशमें आनेवाला है। फिर भी 'अभ्यास' (किसी भी चित्तभूमिमें समानाकार वृत्तिकी बार-बार आवृत्तिरूप) और 'वैराग्य' (दृष्ट तथा अदृष्ट प्रियभोगोंमें पुनः पुनः दोषदर्शनसे उनमें अनिच्छारूप) से उसे निरुद्ध किया ही जा सकता है। इन दो साधनोंसे निश्चय ही मन बाँधा जा सकता है। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि जिसका अन्तःकरण अभ्यास और वैराग्यसे संयत नहीं है, उसे कठिनाईसे यह योग प्राप्त होता है। किन्तु जो स्वाधीनमना है, जिसने अभ्यास-वैराग्यसे मनपर काबू पा लिया है, वह यदि बार-बार प्रयत्न करता है तो उसके लिए पूर्वोक्त उपायोंसे इस योगका प्राप्त होना सम्भव ही है।

आ त्म वि श्वा स
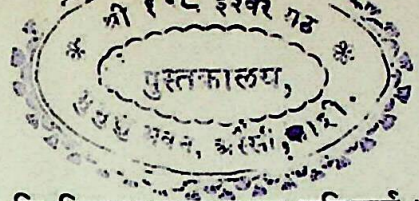
१. अरे, प्राणोंका इतना मोह कि जिसका त्याग सतत अनिवार्य ।
किसी क्षण भी निश्चित अवसान वहीं क्यों इतना हमें विचार्य ।।

२. अरे मानव, तुम अनुभव-पुंज, जगत्के कितने चिर-चल-चित्र ।
देखते रहते प्रतिपल यहाँ तुम्हें है कुछ भी नहीं विचित्र ।।

३. मिट नहीं सकते विधिके लेख भाग्यकी रेखाओंको कौन ।
मिटा सकता है सहसा कहो, अहो कैसे क्योंकर तुम मौन ।।

४. मनुज ही सब कुछ सहनेयोग्य मनुजमें ही अनुरक्ति-विरक्ति ।
हमारे हाथों विधि-निर्माण हमींमें सृष्टि-विलयकी शक्ति ।।

५. कौन चिरजीवी बनकर रहा कर सका चिरसुखका उपभोग ।
मनुज बनकर कैसे हो अमर, यहाँ तो नित वियोग-संयोग ।।

६. हुए फिर इतने व्यर्थ अधीर, आपदाओंके लखकर खेल ।
परिस्थितियोंसे ले संघर्ष, बनो चिरविजयी सुख-दुख झेल ।।

७. तुम्हें जो कुछ पाना है उसे छीन भी सकता कोई नहीं ।
कि सुख हो या निर्मम दुर्भाग्य, नहीं ले सकता कोई कहीं ।।

८. भाग्यपर किसका चिर अनुबन्ध, नियतिपर किसका महाप्रभुत्व।
अवश्यम्भावी किसके हाथ विधि-विधानोंपर किसका स्वत्व ।।

★

९. हमीं सुखके पलनेमें खिले, बने जो आज धूलके फूल ।
हमींने चुने सुमनसे सुमन आज हम ही समेटते शूल ।।

१०. इसीको कहते मानव-हृदय कि जिसमें हास-रुदन-व्यापार ।
चला करता निरवधि औ' सतत अश्रु-फूलोंकी यह बौछार ।।

११. अमर है एक आत्म-विश्वास, कि जगमें हूँ चिरंजीवि महान् ।
क्षुद्र आवर्तोंसे यह दीप, कभी क्या हो सकता निर्वाण ।।

१२. मनुजकी कितनी प्रकृति विचित्र कि पलमें बनता दृढ विश्वास ।
दूसरे ही क्षण उठने लगे, हृदयसे क्यों निर्बल निःश्वास ।।

१३. भाग्य कब किसके अनुकूल, भाग्य है कब किसके प्रतिकूल ।
नियतिके ही सब कुछ आधीन, नियति ही जीवनका सुखमूल ।।

श्री पद्मेश तैलंग

●

हर क्षण ईश्वर-संकेतकी प्रतीक्षा

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी

★

बहुत-से लोग धन-दौलत चाहते हैं। कई लोग भोग तो कई लोग धर्म चाहते हैं। कुछ लोग मोक्ष चाहते हैं, पर भगवान्‌को चाहनेवाले सृष्टिमें बहुत कम होते हैं। भागवतमें आया है :

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचित् मत्पादसेवाभिरता मदीहाः।
अन्योन्यतो भागवताः प्रसह्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि॥

कुछ भक्त भगवान्‌से एक होना भी नहीं चाहते। वे केवल भगवान्‌की चरण-सेवा एवं भगवान्‌का चिन्तनमात्र करते रहते हैं। ऐसे भक्त परस्पर मिलकर भगवान्‌के चरित्रोंका वर्णन-समादर किया करते हैं। देखना यह है कि आपका पुरुषार्थ क्या है? आप अपने तन, मन, धनसे पाना क्या चाहते हैं?

एक सज्जन कहते थे : 'मैने बीस हजारसे व्यापार शुरू किया। एक करोड़ मेरे पास हो गया, पर पुत्र नहीं। आखिर इस धनका क्या होगा, यह मैं कभी नहीं सोचता, इकट्ठा ही करता जा रहा हूँ।' उन्हें इकट्ठा करनेमें ही मजा आता है। उनका पुरुषार्थ धन ही है।

लेकिन यदि आपको भगवान्‌के मार्गपर चलना है तो किसी धनीको धनके कारण अपनेसे श्रेष्ठ न समझें। यदि ऐसा मानें तो आपकी बुद्धि भी धन कमानेमें ही लग जायगी। इसी तरह किसी भोगीको भोगके कारण या किसी धर्मात्माको धर्मके कारण श्रेष्ठ मानना भी खतरेसे खाली नहीं। जिसमें भगवान्‌की भक्ति हो, उसीको श्रेष्ठ मानें; तभी आपकी भक्ति बढ़ेगी।

ऐसे ही जनम-समूह सिराने!
प्राननाथ रघुनाथ सों पति तजि, सेवत पुरुष बिराने॥

महाभारत शान्तिपर्वकी एक कथा है। एक ब्राह्मण धनके लिए किसी यक्षकी आराधना करने लगा। यक्ष बड़ा दयालु था। ब्राह्मण सोया तो वह उसे उठाकर नरक ले गया। नरकमें उसने ब्राह्मणको अनेक नारकीय जीवोंका परिचय कराते हुए कहा : 'ये अमुक राजा हैं, ये अमुक सेठ हैं, ये अमुक धनपति हैं। धन पाकर तुम्हारी भी यही गति होगी।' ब्राह्मण घबरा उठा। बोला : 'मुझे ऐसा धन कभी नहीं चाहिए।' यक्षने उसे समझाया : 'तुम्हारे हृदयमें एक दिव्यतत्त्व है, उसीकी उपासना करो। उसकी उपासनासे ही तुम्हारा कल्याण होगा।'

आपके जीवनका उद्देश्य पारमार्थिक है, तो आपको भगवान्‌के साथ रहना चाहिए। जीना भगवान्‌के लिए और मरना भी भगवान्‌के लिए! प्राण भगवान्‌में मिला दें। वह उन्हें आज ले लें तो कोई उलाहना न दें। मनुष्यको हर क्षण ईश्वरके संकेतकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।

•

कंसकी कूटनीति

श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र'

★

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥—भागवत १०.४.४६

कंस उस दिन कारागारसे लौट आया था। देवकीके हृदयमें निश्चय नारायण आ गये—यह निश्चय तो उसे वहीं हो गया। कारागारके रक्षक बढ़ा दिये गये। सभी विश्वस्त असुरनायक वहीं नियुक्त हुए। उनकी इस प्रकार नियुक्ति हुई कि एक क्षणके लिए भी कारागार मात्र सामान्य सैनिकोंके संरक्षण में न रहे।

कंस मूर्ख नहीं, वह जानता है कि देवकीके गर्भसे सामान्य बालक नहीं आ रहा है कि दस महीनेपर ही आयेगा। 'विष्णु—मायावी नारायण! पता नहीं कब वह प्रकट हो जाय! अदितिके गर्भसे प्रकट होते ही वह वामनरूपमें बलिकी यज्ञशालामें पहुँच गया था।' कंसको लगता है, वह इसी क्षण प्रकट हुआ, आ रहा है—आता होगा! वह बार-बार चर भेजता है नित्य कारागारका समाचार लाने। बैठे-बैठे, सोये-सोये, खाते-पीते, उसे सदा लगता है कि वह आया उसका काल—वह आया हरि! कोई पदध्वनि, तनिक-सा खटका हुआ तो वह चौंक पड़ता है। उसके हाथ खड्गकी मूठपर पहुँचते ही रहते हैं। उसका शरीर बार-बार भयसे काँपता है, रोमाञ्चित होता है। उसके पार्श्वचर लोग समझ नहीं पाते कि मथुराके प्रतापी महाराजको यह कौन-सी व्याधि हो गयी है।

'नारायण - मायावी विष्णु! वह प्रह्लादके लिए हिरण्यकशिपुको मारने खम्भेसे ही निकल पड़ा था!' कंस जो कुछ जानता है वह उसीके लिए भयप्रद हो गया है। उसका ज्ञान ही उसका संकट हो गया है। 'क्या ठिकाना उस मायावीका! वह देवकीका पुत्र तो हो ही गया। अब कहींसे भी निकल पड़े तो?' वह प्रत्येक भित्ति, स्तम्भको घूरता रह जाता है। भोजनके पात्रसे भोजन उठाते, शयनके लिए शय्यापर पैर रखते, अपने ही खड्ग या मुकुटको छूते समय वह ठिठक जाता है। अनेक बार वह किसी भी वस्तुको विचित्र भङ्गीसे घूरता रहता है। 'कहीं इसीमें मेरा शत्रु न छिपा हो! विष्णु इसीसे न निकल पड़े।

'किस रूपमें आयेगा वह नारायण? कौन कह सकता है। वह कभी वाराह, कभी नृसिंह तो कभी और कुछ बनता रहता है! क्या नहीं बन सकता वह? किसका रूप नहीं धारण कर सकता? बड़ी भयंकर बात है।' कंस किसपर विश्वास करे? ये सैनिक, ये सेवक, ये

मन्त्रिगण, यह गज, ये अश्व, कौन जाने किस रूपमें वह छली मारने खड़ा है। कंसको अपनी स्त्री तो क्या, अपनी छाया तकसे भय लगता है।

'यह विष्णु आ रहा है! यह मुझे मारने आ रहा है!' कोई व्यक्ति, कोई पदार्थ दृष्टिमें आते ही लगता है कि वह विष्णु ही है। यह आकृति--भला उस मायावीकी आकृतिका क्या विश्वास? कंसके लिए सभी विष्णु हो गये हैं। सब जगत् ही विष्णु हो गया है। वह सोते सोते चीख पड़ता है। बैठे-बैठे उठ खड़ा होता है। किसी भी सेवक, मन्त्री आदिसे बात करते-करते सहसा रुककर उसे घूरने लगता है और खड्ग खींचने लगता है। सब विष्णु—सब उसके संहारक! कौन कहे कि उसका भय सत्य नहीं है। वह भयसे ही सही, सत्यको—निर्भ्रान्त सत्यको ही तो देखता है। वह हरि ही तो यह सर्वस्वरूप है।

× × ×

'महाराज! महाराज!'—असुर सैनिक अस्तव्यस्त दौड़ते आये हैं। उनके कण्ठसे पता नहीं, दौड़नेके वेगसे या भयके कारण पूरा वाक्य नहीं निकलता। इतना भय—पर उनके महाराज बड़े उग्र स्वभावके हैं। आजकल बड़े चिड़चिड़े हो गये हैं। लोग कहते हैं कि पागल हो गये हैं। 'कारागारमें पुत्र होते ही अविलम्ब समाचार दिया जाय', यह उनका कठोर आदेश! और आदेश भी ऐसा जिसे महीनोंसे महाराजके चर दिनमें कई-कई बार चेतावनीके रूपमें बराबर सुनाते रहे हैं। पता नहीं, महाराज क्या करेंगे? बेचारोंको निद्रा आ गयी थी, उनके अनुमानसे यही दो-एक क्षणको पलक झपक गये और तभी कारागारके भीतरसे नवजात शिशुकी रोदनध्वनि कानोंमें पड़ी। वे अपने शस्त्र उठाकर अस्तव्यस्त दौड़े आये हैं, पर कहीं इस दो-एक क्षणके विलम्बका महाराजको अनुमान हो जाय!······किसी प्रकार उन्होंने कहा : 'वसुदेवजीके बन्दी-कक्षसे नवजात शिशुके रोनेका शब्द सुना है हमने!'

'वसुदेवको पुत्र हुआ! नारायण आया!' कंसने पूरी बात सुनी या नहीं, कौन जाने। वह अस्तव्यस्त दौड़ा, उसके हाथने अपने-आप खड्गको कोषसे खींच लिया। कोई साथ आये, कोई वाहन लिये जाय—इतना सोचनेको अवकाश कहाँ है? उसके वस्त्र अस्तव्यस्त हो गये। वह दौड़ा—दौड़ा कारागारकी ओर और दौड़े उसके साथ उसके सेवक एवं वे समाचार देने आये हुए कारागार-रक्षक!

इधर दो-तीन महीनेसे कंसको निद्रा कहाँ आती थी? वह रात्रिमें बार-बार पूछता था चौंककर कि कारागारसे कोई समाचार तो नहीं आया? कई दिनोंसे तो वह बराबर रात्रिभर जागृत रहकर समाचारकी प्रतीक्षा करता रहा है। कारागारके रक्षकोंमें किसीके आते ही उसे प्रहरी सीधे उसके समीप पहुँचने दें, यह उसने आदेश दे रखा था। इस समाचारकी उसे आशा थी और वह इसके लिए पूर्णतः प्रस्तुत था; इतनेपर भी समाचारने उसे उन्मत्तप्राय कर दिया और वह पैदल ही अस्तव्यस्त भागा कारागारकी ओर। 'विष्णु आया! कहीं वह बड़ा न हो जाय। वामनसे विराट् होते कितने क्षण लगे थे उसे? कहीं···' कंसके भय और

शङ्काका पार नहीं । वह दौड़ा जा रहा है ! पूरी शक्तिसे दौड़ रहा है ! उसके लिए जीवनका प्रश्न है ।

× × ×

'यह बच्ची, यह सौंदर्यमयी; पर यह तो चुप ही नहीं होती । अरे ! रक्षक सुन लेंगे । कंस—क्रूर कंस दौड़ा आयेगा !' माता देवकीने हृदयसे दबा लिया है बालिकाको । वे उसे कैसे चुप करायें—उनके प्राण छटपटा रहे हैं । बड़ी कठिनतासे खूब रो-धोकर तो वह चुप हुई और तब माताके स्तनोंका निश्चिन्त होकर पान करने लगी । यह अमृत—यह भला फिर कहाँ प्राप्त होना है ?

'अवश्य रक्षकोंने सुन लिया होगा ! वह नृशंस आता होगा !' माताको कोई स्थान नहीं दीखता जहाँ वे इस कुसुमकलिकाको छिपा दें । हृदयसे दबाकर, अञ्चलसे ढँककर क्या उसे बचाया जा सकता है, पर और किया भी क्या जाय ?

'वह द्वारपर शृङ्खला झंकृत हुई । वह लौहदण्ड खटका । वह हुआ द्वार खोलनेका शब्द !' माताने दोनों भुजाओंसे दबाकर, घुटनों और कन्धोंको मिलाकर उस बालिकाको अपने अङ्गोंके आवरणमें छिपा लेना चाहा और उनके नेत्र द्वारकी ओर एकाग्र हो गये, जैसे कोई गौ वधिकको कातर नेत्रोंसे देख रही हो ।

'वह दौड़ा आ रहा है कंस ! वह लाल-लाल नेत्र किये, नंगी तलवार उठाये दौड़ा आ रहा है !' वह सीधा दौड़ता आया । उसे दूरसे देखते ही रक्षकोंने द्वार खोल दिये और चुपचाप शान्त दोनों ओर अभिवादन करते खड़े हो गये । कंसने किसी ओर देखातक नहीं । देखनेकी अवस्थामें वह था ही नहीं । साथ आते सेवक उसके साथ दौड़ नहीं सकते थे और सबको इस द्वारपर ही रुक भी जाना था । कंस तो सीधे कारागारमें चला गया वैसे ही दौड़ता ।

'कहाँ है तुम्हारा पुत्र ?' मुख्य द्वारपरसे ही उसकी भयङ्कर गर्जना सुनायी पड़ी । इस बार वसुदेवजी अपने बालकको उपस्थित करेंगे, इतनी प्रतीक्षा वह कैसे करता और इसके लिए अवकाश भी कहाँ था ? इस बार तो द्वार सदा अवरुद्ध रहता था और रक्षकोंको कठोर आदेश था कि कोई कारागारसे बाहर न जाने पाये ।

'भैया !' कंसके शब्द गूँजे । वह दीखा और उस कक्षमें पहुँचा—इसमें कितनी देर लगनी थी । वह सीधे देवकीजीके सम्मुख पहुँच गया । माता देवकीने वैसे ही उसके पैरोंके पास भूमिपर मस्तक रख दिया । वे कदाचित् कंसके पैरोंपर ही मस्तक रखने झुकी थीं, पर वह चौंककर पीछे हट गया उसी क्षण । जैसे उसे देवकीजीके स्पर्शमें भी भय लगा हो । 'भैया, पुत्र कहाँ है ? यह तो तुम्हारी पुत्रवधू है ! मैं तुम्हारे पुत्रसे इसका विवाह कर दूँगी ! तुमने मेरे अनेक पुत्र मारे हैं, यह मेरी अन्तिम संतति है ! मुझे एक यह कन्या दे दो ! इस बच्चीको छोड़ दो !'—माताका परम कातरस्वर क्या वह क्रूर सुनेगा ?

'यह कन्या है !'—कंस चौंका। जैसे उसे विश्वास ही न हुआ हो।

'हाँ भैया, यह कन्या है और वह भी तुम्हारी पुत्रवधू ! मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ। मुझ अभागिनीके लिए इसे छोड़ दो ! इसे मत मारो !' परम सरला माता देवकीने बालिकाको आगे कर दिया। उन्हें जैसे आशा हो गयी कि कंस कन्या समझकर अवश्य छोड़ देगा इसे।

'कन्या सही !' उस नृशंसने दूसरे ही क्षण पैर पकड़पर उस बच्चीको माताके हाथोंसे झटककर छीन लिया और शीघ्रतासे मुड़ पड़ा। 'मायावी विष्णु !' उसे लगा कि उसका छली शत्रु इस कन्यारूपके द्वारा उसे धोखा देना चाहता है। ठीक भी तो है, असुरोंको तो अपने मोहिनी रूपसे ही भ्रान्त किया था उसने !

बालिका छीन ली गयी ! माता देवकीके मुखसे चीत्कार भी आधी ही फूटी और वे संज्ञाहीन हो गयीं। वसुदेवजीकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। उन्होंने कन्याको लाकर देवकीके सम्मुख रखा और मस्तक झुकाकर बैठ गये—जैसे एक मूर्ति हो। 'वे क्यों लाये इस कन्याको ? गये तो वे केवल पुत्रको नन्दभवनमें रखनेको। नन्दरानीके प्रसूति-कक्षके द्वारपर चरण पड़ते ही इस कन्यापर दृष्टि पड़ी। यह उन्हींकी ओर देख रही थी। यह सौन्दर्यमयी, उन्होंने तो एकबार अङ्कमें लेनेके लिए ही उठाया था इसे। पर—पर अब क्या ?' कोई समाधान नहीं। उनके नेत्रोंमें अश्रुतक सूख गये। माता देवकी उस मोहमयी बालिकाकी चिन्तामें पति को ओर देख ही न सकीं, अन्यथा अवश्य भयभीत हो जातीं। इतनी कम्पनहीन—विवर्ण देह, जैसे अन्तरकी व्यथाने देहकी चेतनाको आत्मसात् कर लिया हो। वसुदेवजीने तो फिर मस्तक उठाया ही नहीं। उन्हें कदाचित् पतातक न लगा कि कंस आया और······वे बैठे-बैठे ही रह गये ज्यों-के-त्यों !

× × ×

कंसने बालिकाको छीना और झटकेसे लौट पड़ा। उस क्रूरने रोती, गिड़गिड़ाती, परमदीना अपनी छोटी बहनकी चीत्कारकी भी भर्त्सना की और कक्षसे बाहर उस शिशुहत्यासे कुत्सित शिलापर पटकनेके लिए पैर पकड़कर मस्तकसे ऊपर घुमाया उस कन्याको। कंसकी कठोर मुट्ठी ढीली रही होगी, यह तो सोचा ही नहीं जा सकता; पर कन्याका चरण उसके हाथसे सरक गया। चौंका कंस और उसकी दृष्टि ऊपर उठ गयी।

यह क्या—जैसे कोटि-कोटि सूर्य उदित हो गये हों। आकाशमें यह तेजोमयी—ज्वालामयी अष्टभुजा नारी-मूर्ति ! सर्वाभरणभूषिता, दिव्यमाल्य-अङ्गरागादि-सुसज्जिता, यह धनुष, शूल, बाण, ढाल, करवाल, शङ्ख, चक्र और गदाधारिणी ! यह सिंहवाहिनी महाशक्ति। और ये सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ, किन्नर, नाग, देवता—ये तो कंसके नामसे भयभीत होकर अमरावतीसे भाग खड़े होते हैं—आज ये उसीके सम्मुख इस महाशक्तिका स्तवन कर रहे हैं, पूजन कर रहे हैं, उसे अपने उपहार निवेदित कर रहे हैं। अप्सराएँ नाच रही हैं, किन्नर गा रहे हैं, गन्धर्व वाद्य लिये हैं, सिद्ध स्तवन कर रहे और नाग पूजनमें

लगे हैं। जैसे आज उस अभयदाके सांनिध्यमें उनके लिए कंसकी सत्ता ही नहीं। कंस कौन-सा कीट है—यह क्यों देखें वे ? कंस भीत, स्तम्भित, ऊपर दृष्टि उठाये देखता रह गया ! 'देवकीका अष्टम गर्भ—कहीं ये ही महाशक्ति तो उसे नहीं मारेंगी ?'

'मूर्ख !' ओह, कोई इस प्रकार भी डाँट सकता है ? कंसका तो हृदय बैठा जाता है। उसके नेत्र फटे-फटे-से हो रहे हैं। वह केवल ऊपर घूर रहा है भयसे। वे महाशक्ति डाँट रही हैं उसे : 'मूर्ख, मेरे मारनेके प्रयत्नसे तुझे क्या लाभ हुआ ? व्यर्थ कृपण, अल्पप्राण प्राणियोंकी हत्या करके अपने पापको मत बढ़ा ! तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तो कहीं आ ही गया है !' कहाँ आ गया है वह कंसका काल ? योगमाया क्या निर्देश करें। 'कहीं, यहीं तो उसका इस समय पूरा पता है। वह तो इस भूमण्डलपर आकर भी नहीं-सा आया है। गोकुलमें—गोकुलमें वह जो गोलोकसे परात्पर आनन्दघन आया है, उसका निर्देश दूसरा भले कोई करे, योगमाया कैसे कर दें ? वह व्रज छोड़कर एक पद भी न जानेवाला—भला, वह नित्य गोपाल, वह कंसका पूर्वशत्रु क्यों होने लगा और कंसका पूर्वशत्रु—वह अनन्तशायी, वह इस समय तो गोपालसे एक हो रहा है। उसकी उपलब्धि कैसे करे कोई इस स्थूल-जगत्में। वह आ गया है—कहीं आ गया है, इतना ही तो कहा जा सकता है।

कंस निश्चय पागल हो जाता—कुछ क्षण भी वह समर्थ नहीं था उस महातेजको सहन करनेमें। कुशल हुई, महाशक्ति इतना कहकर ही अदृश्य हो गयीं। कहाँ गयीं वे ? वे ही तो अनेक नामोंसे समस्त शक्तिपीठोंमें विराजमान हैं। वैसे वे गोपालकी छोटी बहन अष्टभुजा सिंहवाहिनी अपने मुख्यरूपसे विन्ध्य-काननमें आराधकोंको अभय देने श्रीविग्रहके रूपमें विराजमान तो हैं ही !

× × ×

'मेरा शत्रु—वह हरि कहीं और प्रकट हुआ !' महाशक्तिके अदृश्य होते ही कंस सावधान हुआ। 'यह कारागार—यह मैं और यह वसुदेव-देवकीका कक्ष ! मैंने व्यर्थ ही देवकीकी सन्तानोंका वध किया।' कह नहीं सकते कि उसके मनको पश्चात्तापने प्रभावित किया या भयने ! भयका कारण तो प्रत्यक्ष है। ये महाशक्ति देवकीकी कन्या हैं और कहीं माता-पिताके कष्टसे वे रुष्ट हों तो ? कंस उनसे शत्रुता करनेका साहस इस समय तो नहीं ही कर सकता और तभी उसका काल—नारायण कहीं आ गया है। उसीसे परित्राण पाना है। 'देवताओंने उससे वञ्चना की !' बहनके प्रति सौहार्द भी जाग उठा है उनके मनमें।

कारण चाहे जो हो—वह शीघ्रतासे कक्षमें आया और सेवकको पुकारनेकी भी अपेक्षा नहीं की। उसने अपने बलिष्ठ हाथोंसे वसुदेव एवं देवकीजीको बाँधनेवाली शृङ्खला एवं बेड़ियाँ झड़ककर तोड़ दीं और वसुदेवजीके सम्मुख हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया।

'बहन, जीजाजी, मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने आपके कई पुत्र पिशाचकी भाँति मार दिये।' कंसके स्वरमें कातरता आयी। उसके लौटनेपर वसुदेवजीने जिज्ञासासे देखा उसकी ओर।

उसे शृङ्खला तोड़ते देखकर माता देवकोकी चेतना पहले ही लौट आयी थी। वह भयके आधिक्यसे चेतन हुई या महाशक्तिके व्यापक आलोकने उन्हें चेतना दी, कौन कह सकता है? किन्तु कंसके विनयने उन्हें आश्चर्यमें डाल दिया !

"मैंने दया, करुणा, सौहार्द—सब छोड़ दिया और हत्यारा बन गया। पता नहीं मेरी क्या गति होगी? जीवित होते हुए भी मृत-सा ही हूँ मैं। केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, ये देवता भी झूठ बोलते हैं। देववाणीपर विश्वास करके मुझ महापापीने शिशुओंकी हत्या की।'—कंसका स्वर पूरा पश्चात्तापपूर्ण हो गया है, इसमें तो संदेहके लिए स्थान नहीं; पर है यह पश्चात्ताप क्षणिक ही !

'आप लोग ज्ञानी हैं, आप जानते हैं कि सब अपने कियेका ही फल भोगते हैं; अतः मेरे द्वारा मारे जानेपर भी आपके पुत्रोंने अपने कर्मका ही फल पाया। उनके लिए आपको शोक नहीं करना चाहिए। सभी जीव दैवके वशमें हैं। दैवके द्वारा विवश होकर वे सदा अपने सुहृदोंके समीप नहीं रह पाते। जैसे पृथ्वीसे धूलिके कण आदि कभी उड़ते और कभी भूमिपर आ जाते हैं, ऐसे ही जीवोंका आवागमन है। जबतक संसारमें भेददृष्टि है, तबतक शरीरका संयोग वियोग होता रहता है और आवागमन छूटता नहीं। कल्याणी बहन, तुम अपने पुत्रोंके लिए शोक मत करो। सभी तो अपने प्रारब्धका ही फल भोगते हैं। मैंने उन्हें मारा, यह ठीक होनेपर भी मनुष्य तो केवल निमित्त है। जबतक यह मारा गया, इसने मारा—ऐसी भावना इस स्वद्रष्टा आत्मामें है, तबतक इस देहाभिमानके कारण जीव बन्धनमें पड़ा है।' अपने शरीरकी आसक्ति, अपनी मृत्युकी चिन्ता कितनी है तुम्हें, यह कौन पूछे कंससे, पर यह तो सदाका नियम है कि शरीरासक्त लोग परोपदेशमें प्रवीण होते हैं।

'मैं दुरात्मा हूँ; पर आप दोनों साधु हैं; दीनोंपर दया करनेवाले हैं, मेरी नीचताको क्षमा कर दें !'—सचमुच कंसने वसुदेवजीके पैरोंपर मस्तक रख दिया और बैठे-बैठे ही उसने देवकीके चरणोंके समीप सिर रखा। वह रोने लगा है। उसके नेत्रोंसे विन्दु टपकने लगे हैं। उसका पश्चात्ताप सच्चा है, इसमें सन्देहका तो अब कोई कारण नहीं।

माता देवकी—वे दयामयी, उन्होंने भाईके नेत्रोंमें अश्रु देखे और उनका सब रोष दूर हो गया। उन्होंने उठकर अञ्चलसे नेत्र पोंछ दिये कंसके: 'भैया, रोओ मत ! तुम्हारा क्या दोष है? मैं हूँ ही हतभागिनी !'

वसुदेवजीने देखा कि पत्नीका कण्ठ भर आया है। कोई माता कैसे अपने पुत्रोंको भूल जाय? उन्होंने हँसते हुए कंसको उठाया हाथ पकड़कर। सान्त्वना दी उसे: "महाभाग, तुम जो कहते हो वही ठीक है; प्राणियोंकी 'यह मैं हूँ और यह दूसरा है' ऐसी बुद्धि अज्ञानसे ही है। शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मदके वशीभूत होकर ही प्राणी एक दूसरेको मारते हैं और भेददृष्टियुक्त होनेसे वे वास्तविक भावको देख नहीं पाते। तुम शोक मत करो ! अब तो जो हो गया, उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है।"

कंसने सेवकोंको आज्ञा दी। कारागारका द्वार उन्मुक्त हुआ। रथके द्वारा वसुदेव

एवं देवकीजीके अपने भवन जानेकी व्यवस्था हुई और उनकी अनुमति लेकर कंस राजसदन लौट आया।

× × ×

'मेरा शत्रु—मुझे मारनेवाला—यह मायावी विष्णु कहीं प्रकट हो गया!' कंसको विश्राम कहाँ? उसे एक ही चिन्ता है। कारागारसे लौट आया वह और प्रातःकाल होनेका अल्पसमय ही उसे युगकी भाँति प्रतीत होने लगा। सूर्योदय नहीं हुआ और सभी मन्त्रीगण बुलाये गये। कंसके मन्त्री—राजाके समान ही तो मन्त्री होंगे। वे पूरी रात्रि जागरण करके मध्याह्नतक सोनेवाले निशाचर! करें क्या, नरेशका आदेश था। सोतेसे जगाये गये और किसी प्रकार अस्तव्यस्त पहुँचे राजसदन। कंसकी मन्त्रणा-सभा बैठी। कंसने महाशक्तिसे जो सुना था, सुना दिया।

'महाराज, यह बात सत्य है—आपने स्वयं सुनी है तो सत्य है ही; पर इसमें सोचना क्या है? दस दिनके और दस दिनसे इधरके जितने शिशु नगरों, ग्रामों और व्रजोंमें हुए हैं, उन सबको हम मार देंगे!'—महाराक्षसी पूतना ही पहले बोली। शिशु-हत्या उसका स्वभाव है, उसकी प्रिय क्रीड़ा है; और यह विष्णु जब अभी प्रकट हुआ है तो शिशु ही तो होगा!

'महाराज चिन्ता न करें; भला ये समरभीरु देवता चाहें भी तो क्या उद्योग कर लेंगे! ये तो आपके धनुषके टङ्कारसे ही सर्वदा बेचैन रहते हैं। आपने जब शस्त्र उठाया, आपके बाणोंके आघातसे ही ये भाग खड़े हुए और बहुत-से तो शस्त्र फेंककर, कच्छ एवं शिखाग्रन्थि उन्मुक्त करके, हाथ जोड़कर दीन बनकर, 'हम भयभीत हैं!' इस प्रकार आपकी शरण आ गये। महाराज, यह तो आपका शौर्य है कि आपने भयविह्वल, शस्त्रास्त्ररहित, रथहीन भागते तथा धनुष टूटे देवताओंको छोड़ दिया, उन्हें मारा नहीं। आप अभी शस्त्रास्त्र भूल नहीं गये हैं। शान्तिके समय शूर बननेवाले, युद्धभूमिसे बाहर डींग हाँकनेवाले देवताओंको गणना ही क्या; और क्या गणना है उस एकान्तवासी हरि या जङ्गली शंकरकी? अल्पप्राण इन्द्र या तपस्वी ब्रह्मा ही आपका क्या कर सकता है?'—चाटुकार महासेनापतिने पूरा व्याख्यान ही दे दिया। पूतनाके प्रस्तावको संकेतसे स्वीकृति देकर भी महाराज प्रसन्न नहीं हुए, इसीसे सेनापतिको प्रोत्साहन मिला।

'महासेनापतिकी बात ठीक है; पर ये देवता हम असुरोंके सौतेले भाई हैं, इनकी उपेक्षा करना भी ठीक नहीं। अतः महाराज इनकी जड़के ही नाशमें हम लोगोंको नियुक्त करें। शरीरमें कोई सामान्य रोग हो जाय और उसकी उपेक्षा कर दी जाय तो वह बद्धमूल हो जाता है और उसकी चिकित्सा असाध्य हो जाती है। उपेक्षा करनेपर इन्द्रियाँ वशसे बाहर हो जाती हैं। ऐसे ही उपेक्षित शत्रु बलवान् हो जानेपर अजय हो जाते हैं। महाराज आदेश दें और हम लोग शत्रुओंकी जड़ खोदनेमें लगें।'—महासेनापतिके पश्चात् महामन्त्रीको बोलना ही था।

कंसने केवल नेत्र उठाकर देख लिया महामन्त्रीको, जैसे वह पूरी योजना सुन लेना चाहता हो। मन्त्रीने अपना अभिप्राय स्पष्ट किया : 'सभी देवताओंकी जड़ विष्णु है। विष्णु न हो तो देवता स्वयं मर जायें। यह विष्णु ही धर्मका रक्षक है और धर्मरूप है। धर्मके कारण ही देवता जीवित हैं। वेद, ब्राह्मण, गौ, तपस्या और दक्षिणापूर्वक होनेवाले यज्ञ—हमारे ये दक्षिणाहीन अभिचारयज्ञ उनसे भिन्न हैं—बस, ये ही धर्मकी जड़ हैं। ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सत्य, शम, दम, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ ही विष्णुके शरीर हैं। वैसे तो वह हरि मायावी है और सबके हृदयमें रहता है; पर है वही सब देवताओंका अध्यक्ष। ब्रह्मा· तक सभी देवताओंकी वही जड़ है। यदि हम उसके इस बाह्य शरीरको नष्ट कर दें·तो अवश्य वह नष्ट हो जायगा। अतः महाराज, आप आदेश दें कि हम ब्राह्मणोंको—विशेषतः ब्रह्मवादी, वेदपाठी ब्राह्मणोंको, यज्ञ करनेवालोंको, तपस्वियोंको और दूध देनेवाली गायोंको जहाँ पायें, वहीं मार दें ! ऋषियोंको मार दिया जाय, यही विष्णुके मारनेका उपाय है।'

'ऋषियोंको मार दिया जाय !' कंसको यह तर्क बहुत संगत प्रतीत हुआ। उसने जान-बूझकर गौओंको मारनेकी बात उपेक्षित कर दी। सभी नरेशोंके गोष्ठ हैं, गोष्ठके नाशसे सभी शत्रु हो जायँगे। एक साथ सबको शत्रु बना लेना कुछ बुद्धिमानी नहीं। गौ अवध्या है। असुर होनेपर भी कंस गोवधकी बात स्वीकार नहीं कर सका। उसने इसके लिए आदेश नहीं दिया। उसे ब्रह्महिंसा ही कल्याणकारिणी जान पड़ी।

जब योजना बन गयी और स्वीकृत हो गयी, तब उसे कार्यान्वित होना ही चाहिए। सम्भव है, पूतनाका ही अनुमान ठीक हो। कंसने पूतनाको शिशुहत्याके लिए नियुक्त किया। 'पहले ऋषियोंका ही वध ठीक है।' उसने असुरोंके यूथ निश्चित कर दिये। उनके प्रधानोंको कहाँ, किस ओर जाना होगा, यह भी उसी समय बता दिया गया। वे हिंसाप्रिय असुर—उन्हें तो अभीष्ट विनोद मिला।

असुर हिंसाके लिए नियुक्त हो गये। तपोवन ध्वस्त होने लगे। यज्ञशालाएँ ही अग्निकी आहुति होने लगीं। लोकपूजित प्रियवर्ग अपनी प्राण-रक्षाके लिए देशत्याग करनेको विवश हुआ। मायावी असुर—वे दूसरे राज्योंमें भी विविध रूपोंसे उपद्रव करने लगे। तपस्वियोंके परम पावन आश्रम रुधिर, हिंसासे अपवित्र हुए और यह प्रारम्भ हुआ जीवनके लिए ! मृत्युपाशमें पड़ा प्राणी इसी प्रकार अपने विनाशको सदासे कल्याणकारी मानता आ रहा है। संयम, तप, त्यागका नाशक और विलास, अनाचार अत्याचारका पोषक मानव कंससे कम अविवेकी कहाँ है ?

सत्य-घटनापर आधारित

योगक्षेमं वहाम्यहम्

कु० शोभा 'वज्रतनया'

एक-एक कर सौ चाँदीके सिक्के गिनकर गिरजाबाईने अपने पुत्रको देते हुए कहा : 'बैल खरीदते समय इस बातका अवश्य ध्यान रखना कि बैल-जोड़ी न अधिक छोटी हो और न अधिक बड़ी ।'

माताकी बात सुनकर नर्मदाप्रसादने उत्तर दिया : 'हाँ', ठीक कहती हो माँ ! सोच-समझकर ही बैल-जोड़ी खरीदूँगा । पिछले कई वर्षोंसे हम अपने कछारको बटिया देते आ रहे हैं । घरू कास्त करनेका समय हमें बड़ी मुश्किलसे मिला है । आप चिंता न करें ।'

इतना कहकर नर्मदाप्रसाद तैयारी करने लगा । आज कौड़िमाका बाजार है । प्रति शनिवार कई लोग अनेक गाँवोंसे यहाँ आकर खरीद करते हैं । यह मवेशियोंका बाजार अपने जिलेमें प्रसिद्ध है । नर्मदाप्रसाद अपने पड़ोसीके पास गया । वह भी बाजार जा रहा था । वहाँ पहुँचकर उसने जो कुछ देखा, उससे वह हैरतमें पड़ गया ।

एक व्यक्ति अपनी आँखें भिगोये कह रहा था : 'आपने मुझे रुपये देनेका वचन दिया था । अब आप अपने वायदेसे पीछे न हटिये ।'

हल्कू बड़कुर लाल-लाख आँखें करता हुआ बोला : 'मेरे पास कोई खजाना तो है नहीं जो मैं तुम्हें जब चाहो तब उधार रुपये देता रहूँ ! अब मैं लाचार हूँ । तुम और कहींसे इन्तजाम कर लो ।'

वह व्यक्ति हल्कूके पैर पकड़ते हुऐ बोला : 'दादा, जितना चाहो सूद ले लेना; पर मुझे रुपये दे दो ।'

हल्कूपर उसकी बातोंका कोई असर नहीं हुआ । वह चुप रहा । उसकी चुप्पी देखकर उस व्यक्तिने शायद अन्दाज लगा लिया कि अब रुपये नहीं मिलेंगे । किन्तु वह इस तरह हार माननेवाला नहीं था ।

'मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि आपकी यह रकम पन्द्रह दिनों बाद लौटा दूँगा । कल मेरी लड़की की भाँवरे हैं । उसकी विदाके बाद मैं कहींसे इन्तजाम कर आपकी रकम लौटा दूँगा ।'—पुन: गिड़गिड़ाते हुए वह बोला ।

'मैं लाचार हूँ ।'—हल्कू खड़ा होता हुआ बोला ।

अब तो उस व्यक्तिके धीरजका बाँध टूट गया । झरझर बरस पड़ी आँखें : 'आज मेरे घर बारात आ रही है । इतने कम समयमें अब कहाँसे इन्तजाम करूँगा ? यदि आपने मुझे भरोसा न दिया होता तो मैं और कहींसे इन्तजाम कर लेता । पर अब तो...... ?'—वह चुप हो गया ।

हल्कू खिझलाकर बोला : 'कुछ भी हो; आज मैं रुपये देनेमें लाचार हूँ । तुम जा सकते हो ।'

'ठीक है दादाजी ! मैं तो जाता हूँ; लेकिन विश्वासघातका फल तुम अवश्य भोगोगे !'

नर्मदाप्रसाद बड़ी देरसे उनकी बातें सुन रहा था । उसे उस व्यक्तिपर तरस आ गया । उसका भावुक हृदय द्रवीभूत हो गया । बड़े आदमी गरीबकी तकलीफ महसूस नहीं कर सकते, पर गरीब गरीबको अच्छी तरह पहचान लेता है । वह व्यक्ति जाते-जाते बोला :

'पैसोंकी कमीके कारण कल मैं अपनी बेटीकी बारात लौटा दूँगा । यह सब मेरी विवशताका परिणाम है । गरीबी सब पापोंकी जड़ होती है । यदि आज मेरे पास पैसोंकी कमी न होती तो...।'

'बस ! बस !! रहने दो !! मैं अब और नहीं सुन सकता । यदि तुम सचमुच पन्द्रह दिनों बाद पैसे लौटा सको तो रुपयोंका इन्तजाम कर सकता हूँ ।'—नर्मदाप्रसाद उसे बीचमें रोककर बोला ।

डूबतेको सहारा मिल गया । शुष्क बगीचा-हरा-भरा हो गया । प्यासेको पानी मिल गया और धूपसे व्यथित पथिकको शीतल छाँह मिल गयी ! वह व्यक्ति प्रसन्नचित्त हो उठा । उसकी आँखें चमकने लगीं । उसका मुरझाया चेहरा खिल उठा । वह भावाधिक्यमें बोला :

'हाँ लालाजी ! अवश्य ही पन्द्रह दिनोंमें रुपये लौटा दूँगा । आप इन्तजाम कर दीजिये ।'

नर्मदाप्रसादने चुपचाप धोतीकी खूटी खोलकर उसे रुपये दे दिये । वह अक्सर धोतीकी गाँठमें ही रुपये रखता था । उसने कहा : 'मैं तुम्हारी मजबूरी समझ रहा हूँ भैया ! अब प्रसन्नतापूर्वक बारातका स्वागत करो । तुम्हारी बेटी सो मेरी बेटी !'

वह व्यक्ति सबको प्रणामकर वहाँसे चला गया ।

अचानक नर्मदाप्रसादकी माता वहाँ आ पहुँची । आते ही गरज पड़ी : 'क्या यहीं बैठे रहोगे ? बाजार जानेका समय हो गया है ।'

नर्मदाप्रसाद चुप रहे । हल्कू बीचमें ही बोल पड़ा : 'भाभीजी ! बैल तो खरीद लिये गये ।

'कैसे ?'—गिरजाबाई अचम्भेमें पड़ गयी ।

'घिन्सा ढीमरको भैयाजीने सारे रुपये दे दिये। उसकी बेटीकी शादी हो गयी और आपके बैल आ गये।'—हल्कू मुस्कराते हुए बोला।

गिरजाबाईके पैरों तलेकी जमीन खिसक गयी। वह नर्मदाप्रसादको भला-बुरा कहने लगीं। नर्मदाप्रसाद चुप रहा। गिरजाबाई उसे जली-कटी सुनाती रहीं। उनकी फटकारने उसे वर्तमानसे उठाकर अतीतकी गहराईमें ला पटका।

वह छह माहका ही रहा होगा, जब उसके पिता इस संसारसे चल बसे थे। अपने पिता काशीप्रसादकी मृत्युके पश्चात् वह अपनी विधवा माता गिरजाबाईके साथ अट्ठायसा ग्राममें आकर रहने लगा। अपने नाना भगवानदासजीकी छत्रच्छायामें रहकर वह निरीह बालक अपना समय व्यतीत करने लगा। उसके नानाकी मृत्युके बाद उसकी नानी बारीबाई, जो बहुत ही भगवद्भक्ता थीं, उसका लालन-पालन करने लगीं।

किन-किन सामाजिक और आर्थिक मुसीबतोंका सामना कर वह बड़ा हुआ था, यह उसे अच्छी तरह याद था। गरीबीके कारण वह अपनी निजी जमीन भी कास्त नहीं कर पा रहा था। बड़ी मुश्किलसे रुपये एकत्रित कर उसने बैल लानेका प्रबन्ध किया था; किन्तु भगवान् उसकी परीक्षा लेनेसे बाज नहीं आये। उसने वे रुपये एक गरीब और असहाय व्यक्तिको देकर अपना कर्तव्य निभाया।

जमीनपर फैली स्पिरिटकी तरह पन्द्रह दिन अनजाने हवा हो गये। घिन्साने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक बेटीकी शादी की। किन्तु वह नर्मदाप्रसादके रुपये न लौटा पाया। लोगोंमें कानाफूसी होने लगी। नर्मदाप्रसादको भी विश्वास हो गया कि अब रुपये नहीं मिलेंगे। आदतसे लाचार होकर वह ऐसी विषम परिस्थितिमें देव हनुमान्‌जीकी मढ़ियामें जाकर प्रार्थना करने लगा :

'हे प्रभु! मेरी लाज बचा लो। एक गरीब व्यक्तिकी सहायता कर मैंने कौन-सा गुनाह किया? आखिर मैं भी तो गरीब हूँ। पन्द्रह दिनोंकी अवधि समाप्त हो चुकी, पर अभीतक रुपये प्राप्त नहीं हुए। अब मैं किस तरह बैल खरीदूँगा? यदि बैल न खरीदे गये तो मैं भूखों मर जाऊँगा।'

इधर गिरजाबाईने बहुत देरतक इन्तजार किया, परन्तु जब नर्मदाप्रसाद घर वापस न आया तो वे मन्दिरकी ओर जाने लगीं। दरवाजेसे बाहर निकलते ही किसीने उन्हें पुकारा। उन्होंने मुड़कर देखा—घिन्सा एक जोड़ी सफेद बैलोंके साथ खड़ा मुस्करा रहा है। उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

'कल मैं बाजार गया था। बैलोंकी यह जोड़ी मुझे सस्ती दीखी, इसीलिए आपके लिए खरीद लाया हूँ। यदि आपको पसन्द न हो तो मैं ही रख लूँगा और आपके पैसे लौटा दूँगा।'—घिन्सा मुस्कराता हुआ बोला।

'कितने की है यह जोड़ी?'—गिरजाबाई आश्चर्यसे बोलीं।

'पूरे सत्तर रुपये की है। बाकीके तीस रुपये ये रहे।'—घिन्सा जेबसे रुपये निकालकर गिरजाबाईको देने लगा।

गिरजाबाईकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उन्होंने बैलजोड़ी खूंटेसे बँधवा दीं। नर्मदाप्रसाद अभी भी मन्दिरमें ही था। गिरजाबाईने मन्दिर जाकर बाहरसे उसे पुकारा। नर्मदाप्रसाद चौंक पड़ा। वह शीघ्रतासे आँसू पोंछकर बाहर आया। माताने सारी घटना उसे कह सुनायी। नर्मदाप्रसाद प्रसन्नतापूर्वक घर गया। धीरे-धीरे यह चर्चा सारे ग्राममें फैल गयी कि नर्मदाप्रसादके घर बैल आ गये। लोग बैल देखने आने लगे।

एक दिन घिन्सा ढीमर नर्मदाप्रसादके घर आया और अपनी विवशता बताते हुए बोला :

'मैं अपने वायदेपर रुपये नहीं ला सका। इसका मुझे बहुत रंज है। मेरी बेटी जब ससुरालसे मायके आयी तो मैंने उसके जेवर गिरवी रखे और आपके रुपये लाया हूँ। ये लीजिये आपके सौ रुपये!'

सौ रुपये अपने हाथमें लेते हुए नर्मदाप्रसाद अचम्भेमें पड़ गये। वे समझ ही नहीं पा रहे थे कि बैलजोड़ी कहाँसे आ गयी?

धीरे-धीरे यह चर्चा सारे ग्राममें फैल गयी कि महावीर बजरंगबली घिन्साका रूप धारणकर नर्मदाप्रसादके बैल खरीद लाये!

माँ गङ्गे!

माँ गङ्गे! जन-मंगल-सेवा-
व्रतका तुम हो ज्ञान।
तेरी लहरोंमें नव-स्वरका
झंकृत होता गान।
परम तपस्वीकी अनुगामिनि,
नैसर्गिक - स्वर्गिक सुखदायिनि,
तेरी बूँदें शब्द-विभवसे
परिचित करती प्राण।
तेरी माया मन हर लेती,
परविद्याका आश्रय देती,
तेरे दर्शनके व्रतसे
देता हूँ अमृत - दान।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव वन्दित,
तू अनन्त महिमासे मंडित,
मुक्त हुए जिनको तेरी
ज्योतिस्सत्ताका भान।

—श्री 'मिश्र'

मम साधर्म्यमागताः—एक चिन्तन

वीतराग श्री रामसुखदासजी

श्रीमद्भगवद्गीताके चौदहवें अध्यायके प्रारम्भिक दो श्लोकोंमें श्रीभगवान् प्रथम आधे श्लोकमें परम और उत्तम ज्ञान पुनः कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं एवं शेष डेढ़ श्लोकमें उस ज्ञानकी महिमाका वर्णन करते हैं, जिसमें उपर्युक्त पदका प्रयोग हुआ है।[1]

परम और उत्तम ज्ञानकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीभगवान् बताते हैं कि (१) इस ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर सबके सब मननशील साधक परमसिद्धिको प्राप्त हो गये हैं। अर्थात् यह ज्ञान सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिका अचूक उपाय है। (२) इस ज्ञानको प्राप्त करके वे मेरी सहधर्मताको प्राप्त होते हैं—फिर उनमें और मुझमें कोई भेद नहीं रहता। (३) उन महापुरुषोंको महाप्रलयकालमें भी किञ्चिन्मात्र पीड़ा नहीं होती एवं पुनः उनकी उत्पत्ति नहीं होती।

अब थोड़ा-सा इसपर विचार करें कि श्रीभगवान्ने यह परम और उत्तम ज्ञान कहनेकी प्रतिज्ञा किस प्रसंगसे की और इसकी महिमा क्या है? इस प्रसंगको समझनेसे हमें श्रीभगवान्के भावोंका कुछ पता लग सकता है।

जब हम इस प्रसंगपर विचार करते हैं तो पता चलता है कि बारहवें अध्यायके प्रथम श्लोकमें अर्जुन श्रीभगवान्से प्रश्न करते हैं कि भक्तिमार्गसे चलनेवालोंमें और ज्ञानमार्गसे चलनेवालोंमें श्रेष्ठ कौन हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें, बारहवें अध्यायके दूसरे श्लोकसे चौदहवें अध्यायके बीसवें श्लोकतक कुल ७३ श्लोकोंमें श्रीभगवान् लगातार बोलते ही जा रहे हैं। गीतामें यह सबसे लम्बा प्रकरण है, जो अपनी विशेषता रखता है।

अर्जुनके प्रश्नके उत्तरमें बारहवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें सर्वप्रथम श्रीभगवान्ने भक्तिमार्गसे चलनेवालोंको श्रेष्ठ बतलाया एवं तीसरे और चौथे श्लोकोंमें ज्ञानमार्गसे चलनेवालोंको भी अपनी प्राप्ति बतलायी; किन्तु पाँचवें श्लोकमें देहाभिमानके कारण ज्ञानमार्गसे चलनेमें कठिनता है यह कहकर ज्ञानमार्गके उपासकोंकी बात वहीं छोड़ दी।

तत्पश्चात् पुनः भक्तिमार्गसे चलनेवालोंकी बातको बतलाते हुए भक्तिकी, उपासनाकी विधि, उसकी सुगमता एवं उन उपासकोंका मैं (श्रीभगवान्) उद्धार करनेवाला होता हूँ—

१. 'मम साधर्म्यमागताः'का अर्थ है: श्रीभगवान्के स्वरूपसे एकता एवं जीवन-अवस्थामें उनके (श्रीभगवान्के) लक्षणोंमें सहधर्मता।

यह बतलाया। तत्पश्चात् भक्तिमार्गके चार स्वतन्त्र साधनोंका वर्णन करके सिद्धभक्तोंके लक्षणोंका वर्णन किया और उन लक्षणोंको ही आदर्श रूपसे सामने रखकर साधन करनेवाले साधक भक्तोंको अपना प्यारा बतलाकर बारहवें अध्यायका उपसंहार किया है।

भक्तिमार्गसे चलनेवालोंका विस्तारसे वर्णन करनेके पश्चात् पुनः वे तेरहवें अध्यायमें ज्ञान मार्गसे चलनेवालोंकी बात कहना आरम्भ करते हैं। बारहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें देहाभिमानके कारण इस मार्गसे चलनेमें कठिनता है—यह बतला ही आये थे। उस कठिनताको दूर करनेके लिए अर्थात् ज्ञानमार्ग सुगमतासे सिद्ध होनेके लिए सर्वप्रथम ही परम और उत्तम ज्ञानको कहते हैं। श्रीभगवान्‌के मतमें वही ज्ञान है, जिसे जानकर सुगमतापूर्वक देहाभिमान मिटाया जा सकता है। उस उत्तम ज्ञानका वर्णन तेरहवें अध्यायमें निम्नांकित प्रकारसे हुआ है :

सर्वप्रथम पहले दो श्लोकोंमें श्रीभगवान् क्षेत्रसे क्षेत्रज्ञको सर्वथा भिन्न एवं उस क्षेत्रज्ञका अपने (परमात्मा) से सर्वथा अभिन्न अनुभव करनेको 'वेत्ति' और 'विद्धि' पदोंसे अपने मतमें ज्ञान बतलाते हैं।

'पुनः सातवें श्लोकसे ग्यारहवें श्लोकतक—बीस साधन-समुदायको 'ज्ञान' संज्ञा दी। पुनः सत्रहवें श्लोकमें 'ज्ञानम्' पद देकर अपनेको ज्ञानस्वरूप बतलाया। पुनः तेइसवें श्लोकमें मूलप्रकृति, पुरुषके यथार्थ जाननेको 'वेत्ति' पदसे ज्ञान बतलाया। पुनः छब्बीसवें श्लोकमें सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे होती है, इसे 'विद्धि' पदसे ज्ञान बतलाया। पुनः सताइसवें श्लोकमें नष्ट होते हुए समस्त भूतोंमें नाशरहित परमात्माको समभावसे स्थित देखनेको 'पश्यति' पदसे ज्ञान बतलाया। पुनः अट्ठाइसवें श्लोकमें जो सबमें समभावसे परमात्माको स्थित देखता हुआ अपने द्वारा अपना नाश नहीं मानता, उसे 'समं पश्यन्' पदसे ज्ञान बतलाया। पुनः उनतीसवें श्लोकमें सम्पूर्ण क्रियाओंको प्रकृतिके द्वारा होती हुई जानना एवं अपनेको सर्वथा अकर्ता समझना, इसे 'पश्यति' पदसे ज्ञान बतलाया। पुनः तीसवें श्लोकमें सम्पूर्ण प्राणियोंके भिन्न-भिन्न शरीरों एवं सम्पूर्ण सृष्टिके विस्तारको एकमात्र प्रकृतिमें ही देखना—इसे 'अनुपश्यति' पदसे ज्ञान बतलाया।

इस प्रकार तेरहवें अध्यायमें क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ एवं प्रकृति-पुरुषके विवेक-रूप ज्ञानका वर्णन हुआ, जिसे 'ज्ञान-चक्षुषा' जाननेपर अर्थात् क्षेत्र मैं नहीं, क्षेत्र मेरा नहीं, एवं क्षेत्र मेरे-लिए नहीं—ऐसा भलीभाँति अनुभव करनेपर कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होकर परमपद प्राप्त हो जाता है।

कारणरूप प्रकृतिसे मुक्त होनेकी बात तेरहवें अध्यायमें विस्तारसे बतलायी गयी, किन्तु विषय सूक्ष्म होनेसे सुगमतापूर्वक समझमें नहीं आता, इसलिए उसके कार्यरूप गुणोंसे, जो प्रकृतिका स्थूलरूप है, मुक्त होनेकी बात चौदहवें अध्यायमें बतलाते हैं। गुणोंसे मुक्त होनेपर प्रकृतिसे स्वतः ही मुक्ति मिल जाती है।

यहाँ एक विशेष बात यह भी ध्यान देनेकी है कि श्रीभगवान् तो अर्जुनको लगातार उपदेश देते ही चले गये हैं, जिन्हें कारण पुरुष महर्षि वेदव्यासजी महाराजने संकलित

करके अध्यायोंका विभाग किया एवं पुस्तकका रूप दिया है। यद्यपि श्रीभगवान् उसो परम और उत्तम ज्ञानका वर्णन प्रकारान्तरसे करते आ रहे हैं, फिर भी कारणरूप प्रकृतिका वर्णन हो जानेपर महर्षि वेदव्यासजी महाराज तेरहवें अध्यायका उपसंहार कर देते हैं एवं प्रकृतिके कार्यरूप गुणोंका वर्णन विस्तारसे होनेके कारण उसे चौदहवें अध्यायका रूप देते हैं, जिससे हम लोगोंको विषय स्पष्टतया समझमें आ जाय। यह महर्षि वेदव्यासजीको हमपर विशेष कृपा है।

साधारणतया जाननेमात्रका नाम 'ज्ञान' है, किन्तु श्रीभगवान्‌ने संसारमें जितने कल्याणकारी ज्ञान हो सकते हैं—सांसारिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक आदि, उन सभी ज्ञानोंमें पवित्र और परमश्रेष्ठ ज्ञान यहाँ बतलाया है। वैसे देखा जाय तो पता लगता है कि गीताजीमें भी अठारहवें अध्यायके बीसवें, इक्कीसवें और बाइसवें श्लोकोंमें श्रीभगवान्‌ने सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारके ज्ञानोंका वर्णन क्रमशः किया है; किन्तु गुणजन्य ज्ञानका वर्णन होनेसे वे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान नहीं है। पर यहाँ जिस ज्ञानका वर्णन है वह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है। इससे बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं। इसको जाननेके बाद और कुछ जाननेको इच्छा नहीं रहती (गी. ७.२)। यह ज्ञान नित्य-निरन्तर एकरस रहता है। इसमें कभी कमी या विपरीतता नहीं आती। इसको जाननेके बाद फिर कभी मोह नहीं होता (गी. ४.३५)। इसे जानना ही अध्यात्म-विद्या है, जो श्रीभगवान्‌की एक विभूति है। (गी. १०.३२)। जिस प्रकार गोमूत्र छिड़कनेपर वस्तुएँ पवित्र मानी जाती हैं, वैसे ही इस ज्ञानको समझनेकी चेष्टामात्र करनेपर मानव पवित्र होता चला जाता है, जाननेपर तो परम पवित्र हो ही जाता है।

इस परम और उत्तम ज्ञानका वर्णन करते हुए चौदहवें अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने बतलाया है कि जितने भी क्षेत्र पैदा होते हैं सभी प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं। प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं गुण और गुणोंसे होती है सृष्टि, अतः सृष्टि त्रिगुणात्मक ही है। सत्त्वगुणको मुख्यतासे स्वर्गादि-लोक, रजोगुणकी मुख्यतासे मनुष्यलोक एवं तमोगुणकी मुख्यतासे पाताललोक है। क्षेत्रमें रहनेवाला क्षेत्रज्ञ परमात्माका अंश है, किन्तु भूलसे अपने स्वरूपको न पहचानकर वह क्षेत्रको ही अपना स्वरूप मान लेता है, तो गुणोंके द्वारा बँध जाता है। अतः यहाँ श्रीभगवान् उन गुणोंके बारेमें विस्तारसे बतला रहे हैं कि उन तीनों गुणोंका स्वरूप क्या है, वे किस प्रकार जीवको बाँधते हैं, दो गुणोंको दबाकर एक गुण किस प्रकार बढ़ता है, बढ़े हुए गुणोंके लक्षण क्या हैं, उनकी वृद्धिमें मरनेवालोंकी गति क्या होती है एवं उनसे छुटकारा कैसे पाया जाय ? आदि।

तीनों गुणोंसे छुटकारा पानेके लिए श्रीभगवान् बतला रहे हैं कि क्षेत्रज्ञ (जीव) मेरा अंश है, अविनाशी है। अंश होनेके कारण मेरी सहधर्मताको प्राप्ति करनेका उसे पूरा अधिकार है; क्योंकि वास्तवमें वह मेरा सहधर्मी है, मेरा स्वरूप है। केवल प्रकृतिजन्य गुणोंके सङ्गसे अर्थात् उन्हें 'मैं', 'मेरा' अथवा 'मेरेलिए' मानने अविनाशी होता हुआ भी उनसे बँध जाता है। बन्धन तभीतक है जबतक वह अपनी ओर नहीं देखता। प्रकृति-

जन्य गुणोंके परिवर्तनके साथ अपनेको मिलाकर उन भावों और क्रियाओंमें तदाकारता प्राप्त-कर और उन्हींसे लाभ लेनेकी भावना लेकर वह सुखी और दु:खी होता रहता है, जिसमें सुखका प्रलोभन ही ज्यादा रहता है। किन्तु उसे इनमें सुख मिलना असम्भव है। सुख मिल नहीं सकता। प्रकृतिजन्य गुणोंकी ओर दृष्टि रहनेसे कभी सात्त्विक सुखमें, कभी राजसी कर्मोंके सुखमें तो कभी तमोगुणी मोह, प्रमाद, आलस्यके सुखोंमें स्वयंको सुखी मानता हुआ भी उनसे अपनेको सन्तुष्ट नहीं कर पाता; बल्कि तीनों गुणोंसे मोहित होनेके कारण गुणोंमें ही फँसा रहता है। इधर खयाल ही नहीं करता कि मेरे सामने गुणोंका परिवर्तन हो रहा है, पर मै वही हूँ। घटना, क्रियाएँ अनेक हैं, पर मैं एक हूँ। विनाशी पदार्थोंमें मैं एक अविनाशी हूँ। तरह-तरहके परिवर्तनोंमें मैं अपरिवर्तनशील हूँ। गुणोंका परिवर्तन दृश्य है और मैं देखनेवाला हूँ। ये जाननेमें आनेवाले हैं और मैं जाननेवाला हूँ। ये उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं और मैं कभी मिटनेवाला नहीं। सम्पूर्ण पदार्थ, क्रिया, घटना, परिस्थिति, व्यक्ति, सब-के-सब आने-जानेवाले हैं और मैं एकरस रहनेवाला इनसे अलग हूँ।

श्रीभगवान् परम और उत्तम ज्ञानका -रहस्य समझाते हैं कि सम्पूर्ण क्रियाएँ गुणोंमें हो रही हैं। तेरा इन क्रियाओंसे किंचित्-मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। तू बिलकुल इनसे सम्बन्ध-रहित है। तेरा सम्बन्ध मुझसे है। जैसे मै हूँ, वैसे ही तू है। इस देहको उत्पन्न करनेवाले इन गुणोंसे तेरा बिल्कुल सम्बन्ध नहीं। जनमना-मरना, सुखी-दु:खी होना, स्वस्थ रहना, व्याधिग्रस्त रहना, जवान होना, वृद्ध होना आदि सभी देहके धर्म हैं। अतः इनके द्वारा होनेवाली हलचलें देहमें हैं, तेरे स्वरूपमें नहीं। तेरा स्वभाव तो स्वत:शुद्ध, निर्विकार, शान्त, एकरस रहनेका है। अतः तुम्हें सदा अपने स्वभावका अनुभव करना चाहिए। अपने स्वभावका अनुभव करनेपर तुझे मेरी सहधर्मताका अनुभव हो जायगा।

(क्रमशः)

महासीतकी चढ़ाई !

सीतकी प्रवल 'सेनापति' कोपि चढ्यो दल, निबल अनल दूरि गयो सियराईकै।
हिमके समीर तेई वरखैं विखम तीर, रही है गरम भौन-कोननिमें जाइकै॥
धूम नैन बहै, लोग होत हैं अचेत तऊ, हियसों लगाइ रहें नेक सुलगाइकै।
मानो सीत जानि महासीत तें पसारि पानि, छतियाँकी छाँह राख्यो पावक छपाइकै॥

—महाकवि सेनापति

असली-नकलीका भेद

डॉ० सुरेशव्रत राय

★

मेलेके दिन, ग्रामीणोंकी रंग-बिरंगी भीड़ ! नगरकी दूकानों, भवनोंको देखते हुए मेलेसे लौटती अपार जनता ! कुछ मुड़ जाते हैं सिनेमाघरकी ओर बाइस्कोपका तमाशा देखनेके लिए, जिसके बारेमें अबतक चौपालोंमें केवल चर्चा सुनी थी। सबसे मँहगा टिकट खरीदकर सबसे अगली पंक्तिमें बैठे हैं, जिससे सारा तमाशा पूरा और साफ-साफ दिखायी दे और पूरा आनन्द उठा सकें। हालमें अँधेरा होते ही इन्हें परेशानी होने लगती है, शोर आरम्भ होता है; पर लोग समझा-बुझाकर बैठा देते हैं। इसी बीच पर्देपर रुपहली एवं रंगीन तस्वीरें गुजरने लगती हैं। उन्हें भी इतना मजा आ रहा है कि बोले बिना रहा नहीं जाता।

अभी न्यूज-रील ही दिखलायी जा रही है। ब्रह्मपुत्रकी बाढ़का दृश्य है जिसे देखकर ग्रामीण चीख उठते हैं, जैसे लहरें-भँवर उन्हें ही सिनेमाहाल-समेत निगलती चली आ रही हैं। उनके बीच जैसे भूकम्प आ गया हो। उन्हें फिर समझाया जाता है : "कपड़े छूकर देखो, भींगेतक नहीं। बाढ़ कहाँ है ? किसी प्रकार उन्हें यकीन होने भी नहीं पाता कि तेज रेलगाड़ी धड़धड़ाती हुई निकल जाती है, नये दर्शक फिर घबराकर चिल्ल पों मचाने लगते हैं। कुछ लोग उनके गँवारूपन पर हँस रहे हैं। कुछको मजा आ रहा है इस अनोखे सिनेमामें और कुछ भुनभुना रहे हैं। उनके देखनेमें इस होहल्लेके कारण व्यवधान बढ़ रहा है।

इसी बीच एक दृश्यमें बाघ गुर्राकर दहाड़ता हुआ नायकपर झपटता है। भयभीत दर्शकोंके लिए अब अपनेको रोक रखना कठिन हो जाता है। वे सारी ताकतसे चिल्लाकर लोगोंसे टकराते-भिड़ते हालमें भागने लगते हैं। हालमें प्रकाश हो जाता है और बेचारे ग्रामीण धक्के देकर निकाले जाते हैं। "चले हैं सिनेमा देखने ! गँवार कहींके, पहले असली नकलीका भेद समझो, सेनिमा देखने लायक बनो, फिर आना सेनिमा देखने··· ।" बात खतम हो जाती है, लेकिन जाते हुए उनमेंसे एक बुजुर्ग जैसा ग्रामीण बड़बड़ाता चला जाता है : 'यही तें कहा रहा छल-प्रपंचमें मत पड़ो। एकबार दुर्योधन जमीन-पानीके छलवाले चक्करमाँ फँसा तो महाभारतके युद्धमें समूचा परिवार काम आएन, हमलोग चक्करमाँ पड़े बाइस्कोपके तो धक्का देके निकाले गये।"

उसकी बात मनमें चुभती रहती है, छोटेसे चित्रको सच मान लेनेपर ऐसी दुर्गति हुई। हम भी तो उन्हीं ग्रामीणोंकी भाँति क्षणभंगुर सांसारिक वस्तुओंको ही सर्वस्व, जीवनका चरम लक्ष्य मानकर जीवनभर जूझते रहते हैं, सुख-सन्तोष और शान्तिकी खोजमें ! परन्तु मिलता कुछ नहीं। १५-२० मिनट चार-छह चित्रोंको सच समझ लेनेकी अज्ञानताके कारण ग्रामीणोंका अपमान हुआ, उन्हें धक्के देकर निकाला गया। तब इतने बड़े संसारमें जीवन-पर्यन्त भ्रमजालमें फँसे रहनेवालोंकी नियत क्या होगी······ ?

निष्काम कर्म और सेवा

श्री रामकुमार भुवालका

★

कर्म वस्तुतः सर्वव्यापी धर्म है। ईश्वर भी इससे मुक्त नहीं। यह सृष्टि-चक्र ईश्वरके कर्मका ही रूप है। जिस प्रकार ईश्वरके कर्मसे सृष्टिमें जीवकी उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार जीवके कर्म भूमण्डलपर नाना प्रकारकी रचनाएँ कर रहे हैं। कर्म सृजनका ही स्रोत नहीं, हर जीव-अजीवका धर्म है। किन्तु इसे मूलतः दो श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है : एक कर्म वह है, जो स्वार्थ-भावनासे, आत्म-हितमें किया जाता है। जैसे धनोपार्जन, भोजन पकाना, खाना आदि। दूसरा कर्म वह है, जो निःस्वार्थ, परोपकारकी भावनासे किया जाता है। इस प्रकारके कर्मको 'सेवा' की संज्ञा दी जाती है। जहाँ प्रथम और द्वितीय प्रकारके कर्म सकाम होते हैं, वही ये दोनों प्रकारके कर्म निष्काम भी होते हैं। जो कर्मफलकी कामना किये बिना स्व-धर्म मानकर किये जाते हैं, उन्हें 'निष्काम कर्म' कहा जाता है। 'सेवा' सकाम भी हो सकती है और निष्काम भी। जो सेवा पुण्य-लाभकी भावनासे की जाती है, उसे निष्काम कदापि नहीं माना जा सकता।

कर्म आवश्यक है, अनिवार्य है। कोई भी जीव कर्म किये बगैर रह नहीं सकता, यद्यपि अधिकतर जीव सकाम कर्म ही करते हैं। यदि सकाम कर्म अनिवार्य, अपरिहार्य है तो निष्काम कर्म वांछनीय हैं, श्रेष्ठतम प्रकारका कर्म है। निष्काम कर्मका भारी माहात्म्य है। निष्काम कर्म वस्तुतः वही कर सकता है, जो राग और विरागको एकभावसे ग्रहण करता है तथा जिसे जीवनमें न कोई भय है, न चिन्ता या मोह-लोभ आदि। यह साधुपुरुषके लिए ही सम्भव है और इसीलिए इसका भारी माहात्म्य है।

या तो दैनिक-जीवनके सभी मूल कर्म सकाम होते हैं और सभीको ये कर्म करने होते हैं, पर साधुपुरुषके लिए सकाम कर्मकी मर्यादा वहीं समाप्त हो जाती है, जहाँ दैनिक-जीवनकी मूल आवश्यकताओंकी सीमा होती है। जैसे : खाना, सोना, वस्त्रादि पहनना।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि निष्काम कर्म निष्फल होता है। हर कर्मका फल होता है। सकाम और निष्काम कर्मोंके मध्य अन्तर मात्र यही है कि सकाम कर्म फलकी कामनासे किया जाता है, जब कि निष्काम कर्मका स्रोत और प्रेरणा फलकी कामना नहीं होती। निष्काम कर्मको हर कालमें श्रेष्ठ माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि तुम्हें मेरी शरण जानेके अलावा और कुछ नहीं करना है, क्योंकि भक्ति निष्काम सेवाकी पूर्व शर्त है। उन्होंने कहा है :

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

अर्थात् हे पार्थ, जो मुझमें परायण रहकर सब कर्म मुझे समर्पण करके एकनिष्ठासे मेरा ध्यान धरते हुए मेरी उपासना करते हैं और मुझमें जिनका चित्त पिरोया हुआ है, उन्हें मृत्युरूपी संसारसागरसे मैं झट पार कर लेता हूँ।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

अर्थात् अपना मन मुझमें लगा, अपनी बुद्धि मुझमें रख, इसमें इस (जन्म) के बाद निःसंशय मुझे ही पायेगा।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥

अर्थात् यदि तू मुझमें अपना मन स्थिर करनेमें असमर्थ हो तो हे धनञ्जय ! अभ्यास-योगसे मुझे पानेकी इच्छा रख।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि॥

अर्थात् ऐसा अभ्यास रखनेमें भी तू असमर्थ हो तो कर्म मात्र मुझे अर्पण कर। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्म करनेपर भी तू मोक्ष पायेगा।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥

अर्थात् और जो मेरे निमित्त कर्म करनेभरकी भी तेरी शक्ति न हो तो यत्नपूर्वक सब कर्मोंके फलका त्याग कर।

यह गीताके बारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा। बात भी ठीक है, जब कोई कर्म करते हुए उसमें भावनात्मक लगाव रखेगा, तो उसे बड़ी परेशानी होगी। जैसे बागका माली बीज बोता है, खाद देता है, पानी देता है। उसके अंकुरणतक बहुत साव-धानीसे हर बातका ध्यान रखना होता है। अंकुरण होनेपर और भी सावधानीसे पौधेका पालन-पोषण करना पड़ता है। पौधा बड़ा होनेपर फल-फूल देता है, लेकिन मालीका उससे कोई लगाव नहीं होता। फल-फूल भगवान्पर चढ़ें या वाटिका-स्वामीके पास चले जायें, उसे इससे कोई सम्बन्ध नहीं।

ऐसी ही स्थिति दूकानों, व्यापारिक संस्थानों और बैंकोंमें काम करनेवाले कोषा-ध्यक्षोंकी होती है। वे लाखों-करोड़ोंका लेन-देन अपने हाथों करते हैं। उसमें उनका निजी

लगाव नहीं होता। लाभ हो या हानि, उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। लेकिन यदि कोषमें जमा-पूंजीमें कोई कमी हो जाय तो यह उसकी जिम्मेदारी होती है।

इससे यह शिक्षा मिलती है कि यदि आप कोई उचित काम करते हैं, तो उसका कोई मुआवजा नहीं मिलता, पर यदि अनुचित काम करनेपर हानि हो जाय तो उसका दण्ड आपको ही भोगना होगा। यही ईश्वरका विधान है। ऐसे ही आप जो कर्म करते हैं, वह आपका कर्तव्य है। पर यदि उनमें कोई कमी हो जाय तो उसके लिए दण्ड भोगना पड़ता है। यह विस्तारपूर्ण विवेचनका विषय है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीने देशके प्रति जो मूक-सेवा की है, वह सर्वविदित है। उनकी सेवा निष्काम थी, क्योंकि उन्होंने अपने लिए कभी कुछ नहीं चाहा। पर उन्हें क्या मिला? निष्काम कर्म करनेवालेको प्राणोंका मोह नहीं होता। इसलिए उसे मृत्युका वरण करनेमें कोई कष्ट या दुःख नहीं होता। वह सत्यका पुजारी होता है और सत्यका पुजारी ही निष्काम सेवा कर सकता है।

बिना निस्पृह हुए निष्काम सेवा बन नहीं पाती। निष्काम कर्मवीरको हर एककी सहायताके लिए हर समय तत्पर रहना पड़ता है। वह दूसरोंके कष्ट-निवारणमें सहायक होता है। यह सब वह अपना पुनीत कर्तव्य समझकर करता है। उसे फल या पुरस्कारकी कामना नहीं रहती। यदि वह किसीकी सहायता करने या उसका कष्ट-निवारण करनेमें असमर्थ होता है तो उसे सही रास्ता अवश्य बता देता है और जिन क्षेत्रोंसे सहायताकी सम्भावना हो, वहांतक पहुँचनेमें उसकी मदद करता है।

यों निष्काम-सेवा नीरस होती है। साधारण मनुष्यको, जो अपने स्वार्थोंकी सिद्धिमें व्यस्त है, इसमें कोई आकर्षण दिखायी नहीं देता। लेकिन सेवा आखिर सेवा है। इससे बढ़कर कोई काम नहीं। जो निष्काम सेवामें लिप्त होता है, वह महान् योगी है। उसके कर्मका लक्ष्य स्वयं कष्ट उठाकर दूसरोंके कष्ट दूर करना होता है।

उदाहरणके लिए, प्राकृतिक चिकित्साको ही लीजिये। प्राकृतिक चिकित्सा अर्थ-लाभकी भावनासे नहीं की जाती। उसमें धैर्य एवं संयमकी महती आवश्यकता होती है। जिसे ईश्वरकी प्रकृतिमें विश्वास नहीं, वह प्राकृतिक चिकित्सासे लाभ नहीं उठा सकता। व्यायाम करनेको प्रोत्साहन देना, निरक्षरको निःशुल्क साक्षर बनाना, निःशुल्क-चिकित्सा आदि कर्म निष्काम सेवाकी श्रेणीमें आते हैं।

सेवा करनेसे पहले ईश्वरके प्रति सच्ची भक्ति-भावना, निर्भीकता, साहस, लगन, सहिष्णुता, दयाभाव, धैर्य, संयम, उदारता और कष्ट सहनेकी असीमित क्षमता जरूरी है। सत्य, अहिंसा और त्याग इसके मूल गुण है। निष्काम सेवा सबसे बड़ा धर्म है और इसीलिए कष्ट-साध्य है। निष्काम-सेवी इस कष्टपूर्ण संसारके रत्न हैं, क्योंकि वे ही इस पृथ्वीको रहने लायक बनाये हुए हैं। वे महान् योगी, तपस्वी और सर्व-पूज्य हैं।

योग : साहित्यकी भाषामें : १

अभ्यास-योग और उसकी साधना

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट

★

कहते हैं कि बोपदेव अत्यन्त मन्दबुद्धिवाले बालक थे।

पाठशालामें पढ़ने जाते, तो पाठ न याद होनेसे अकसर ही दुतकारे जाते।

बड़ा बुरा लगता। पाठ याद करनेका प्रयत्न करते, परन्तु सुनानेको जब कहा जाता, तो दिमाग काम न देता।

एक दिन गुरुजीने बुरी तरह उनकी भर्त्सना की, तो वे बड़े दुःखी होकर पाठशालासे निकल पड़े।

सोचा उन्होंने कि ऐसा जीवन भी किस काम का, जिसमें रोज ही फटकार सुनानी पड़ती है!

चलते-चलते एक कुएँपर जा पहुँचे।

जीवन समाप्त करनेकी बात सोच ही रहे थे कि एक महान् विचार उनके मस्तिष्कमें उठ खड़ा हुआ।

पत्थरके पनघटपर ये गड्ढे कैसे पड़े हैं?

मिट्टीका घड़ा और पत्थरपर उसके निशान?

कैसे सम्भव हुआ यह?

जब मिट्टीका घड़ा रखते-रखते पत्थरपर निशान पड़ सकते हैं, तो मैं रोज-रोज पाठका अभ्यास करूँ, तो क्या मुझे पाठ याद ही नहीं होगा? मैं क्या इससे भी अधिक जड़ हूँ?

× × ×

बोपदेवको जीवनका, सफलताका सूत्र मिल गया—अभ्यास करो, दीर्घकालतक अभ्यास करो, प्रतिदिन अभ्यास करो, श्रद्धा और आदरके साथ अभ्यास करो।

और इसका परिणाम?

बोपदेवने विद्वत्तामें जो नाम कमाया, वह कौन नहीं जानता?

× × ×

सच ही है :

करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत - जात ते, सिलपर होत निशान ॥

× × ×

महर्षि पतंजलि कहते हैं :

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

—समाधिपाद २।

चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका नाम है योग।
पर वृत्तियोंका यह निरोध होता कैसे है ?
अभ्यास और वैराग्य द्वारा।

अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः। —समाधिपाद १२।

यह तो माना कि अभ्यास और वैराग्यसे वृत्तियोंका निरोध होता है, पर यह अभ्यास है क्या, इसकी साधनाकी कैसे जाती हैं और उसमें सफलता कैसे मिलती है ?

पतञ्जलि भगवान् उसका भी उपाय बताते हैं :

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।
स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः।

—समाधिपाद १३, १४।

× × ×

चित्तकी स्थिरताके लिए जो प्रयत्न किया जाता है, उसका नाम है—अभ्यास।

विनोबा कहते हैं : 'ध्यानयोगके लिए चित्तकी एकाग्रता, जीवनकी परिमितता और शुभ साम्यदृष्टिकी जरूरत है।' इसके सिवा और भी दो साधन बताये हैं—वैराग्य और अभ्यास। एक है विध्वंसक और दूसरा है विधायक। खेतसे घास उखाड़कर फेंकना विध्वंसक काम हुआ। इसीको 'वैराग्य' कहते हैं। उसमें बीज बोना विधायक काम है। मनमें सद्विचारोंका पुनः पुनः चिन्तन करना 'अभ्यास' कहलाता है। वैराग्य विध्वंसक क्रिया है, अभ्यास विधायक क्रिया।

× × ×

तो, सद्विचारोंका पुनः पुनः चिन्तन करना और उन्हें दृढ़ करनेका प्रयत्न करना ही 'अभ्यास' है।

होता यह है कि हमारे मनमें तरह-तरहकी वृत्तियाँ उठती रहती हैं। अभी एक है तो पलभर बाद दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। यह क्रम, यह सिलसिला हरदम जारी रहता है। व्यास भगवान् कहते हैं :

चित्तनदी नाम उभयतो वाहिनी, वहति कल्याणाय, वहति पापाय च।

चित्त नामक नदी दोनों दिशाओंमें बहती है। कल्याणकी ओर भी बहती है, पापकी ओर भी।

हमें उसे ले जाना है कल्याणकी ओर। पर वह आसान बात नहीं है।

क्षिप्त, मूढ और विक्षिप्त इन तीन प्रकारकी अवस्थाओंमें हमारी वृत्तियाँ सतत घूमती रहती हैं।

उन्हें रोकना, उन्हें सन्मार्गपर ले चलना हमारा लक्ष्य है।

उसका साधन है—अभ्यास।

× × ×

मनपर पल-पल, क्षण-क्षण इन वृत्तियोंका प्रभाव पड़ता रहता है। उसीके अनुसार अच्छे-बुरे संस्कार बनते हैं। ये संस्कार ही हमें तारते हैं, ये संस्कार ही हमें मारते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि प्रतिक्षण हम अच्छे ही संस्कार डालनेकी चेष्टा करें।

इसका उपाय?

उपाय यही है कि हम सतत सावधान रहें। हर दम हम इस बातका प्रयत्न करें कि हमारा चित्त स्थिर रहे, विचलित न हो, उसमें शुभ-संस्कार ही पड़ें, अशुभ-संस्कार हमारे पास भी न फटक सकें।

एक वृत्ति आती है, वह जरा-सी देर ठहरती है। तबतक दूसरी वृत्तिका उदय हो जाता है। हमें करना यह है कि एक वृत्तिके उपशम और दूसरी वृत्तिके उदयके बीच जो संधिकाल रहता है—भले ही वह एक या आधे सेकेण्डका ही हो—उसे बढ़ानेकी सतत चेष्टा करते रहें। इस निरोधावस्थाको हम ज्यों-ज्यों बढ़ाते जायँगे, त्यों-त्यों हमारा चित्त स्थिर होता चलेगा।

× × ×

सारी वृत्तियोंके निरोधका जो प्रवाह रहता है, उसे कहते हैं—प्रशान्तवाहिता स्थिति। इस स्थितिको प्राप्त करनेका सतत प्रयत्न ही अभ्यास है।

निरोधके ये क्षण जितनी अधिक देरतक टिकेंगे, उतनी ही अधिक हमें अपने अभ्यासमें सफलता मिलेगी।

× × ×

अंग्रेजीमें कहावत है कि Practice makes a man perfect. 'अभ्याससे मनुष्य पूर्णत्व प्राप्त करता है।'

लौकिक हो या पारलौकिक, कोई भी काम बिना अभ्यासके पूरा नहीं होगा। वर्षों पढते हैं, आठ-आठ, दस-दस घण्टे रोज पढ़ते हैं, बिला नागा पढ़ते हैं—तब कहीं हम परीक्षामें सफलता पाते और स्नातकका प्रमाणपत्र हासिल करते हैं।

फिर यह तो जीवनकी साधना है। इसमें सतत अभ्यास न करना पड़े, यह कैसे हो सकता है ?

× × ×

तो, मनको किसी एक लक्ष्यपर स्थिर करनेका अनवरत प्रयत्न हुआ अभ्यास।

किशोरलालभाई कहते हैं : "अभ्यास-योगी जानता रहता है कि मैं क्या साध रहा हूँ, क्या प्राप्त करता हूँ और कहाँ हूँ। वह जो कुछ करता है, ज्ञानपूर्वक करता है।"

अभ्यास-योगकी यह साधना तभी सफल होगी, जब साधकमें ये तीन बातें होंगी :

(१) दीर्घकाल-साधन।

(२) निरंतर साधन और

(३) साधनमें आदर और श्रद्धा।

× × ×

हथेलीपर आम नहीं जमा करता। किसी भी कार्यमें सिद्धिके लिए यह जरूरी है कि दीर्घकालतक साधना की जाय। साधकको पूरे उत्साहसे सतत साधना करते रहना चाहिए। दिन बीतें, मास बीतें, साल बीतें—उसे पूरी दृढ़तासे अपने साधनमें लगा रहना चाहिए।

उसकी दीर्घकालीन साधनाका आदर्श भगवान् बुद्ध रहे; जो कहते थे :

इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं प्रलयं च यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्पदुर्लभं नैवासनात् कायमानश्चलिष्यते ॥

शरीर सूखे तो सूखे, मांस, चमड़ा, हड्डियाँ नष्ट हों तो हों, परन्तु बहुकल्पदुर्लभ जो बोध है, उसे पाये बिना मैं इस आसनसे डिगनेवाला नहीं।

× × ×

अभ्यासमें नैरन्तर्य परम आवश्यक है। चार दिन जोश रहा तो जप भी कर रहे हैं, ध्यान भी कर रहे हैं, पाठ भी कर रहे हैं। जहाँ जोश ठंढा हुआ तो वह पड़ी है माला, वह पड़ी है आसनी, वह पड़ी है पोथी !

इस तरहसे अभ्यासमें कभी भी सफलता मिल नहीं सकती।

अभ्यास तो रोज होना चाहिए। प्रतिदिन होना चाहिए। हर क्षण होना चाहिए। उसमें नागा पड़ा कि मामला बिगड़ा। उसमें व्यवधान पड़ना ही नहीं चाहिए।

× × ×

पर यह दीर्घकालीन और निरन्तर साधन चलेगा कैसे ?

उसके लिए आवश्यकता है—श्रद्धाके सम्बलकी।

अभ्यासमें सत्कार-बुद्धि हो, उसके प्रति भरपूर आदर हो, श्रद्धा हो, तभी साधनमें सफलता मिलेगी।

बिना श्रद्धाका किया हुआ काम भी कोई काम है ? गीतामें कहा है :

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

विना श्रद्धाके जो भी काम किया जाता है, उसका न इस लोकमें कोई सुफल मिलता हैं, न परलोकमें।

इसलिए पूरी श्रद्धा और आदरसे अभ्यास-योगमें जुटना चाहिए। बिना उसके न तो किसीको सफलता मिली है और न मिल सकती है।

× × ×

सारांश :

(१) चित्तवृत्ति-निरोधका विधायक साधन है अभ्यास।
(२) सद्विचारोंके पुनः पुनः चिन्तनका नाम है—अभ्यास।
(३) निरोधके क्षणोंको बढ़ानेका प्रयत्न है—अभ्यास।
(४) अभ्यासकी दृढ़ताकी तीन शर्तें हैं—दीर्घकाल-साधन, निरन्तर-साधन और साधनमें पूरी श्रद्धा।
(५) अभ्यास दीर्घकालतक करते रहना चाहिए।
(६) अभ्यासमें नागा नहीं पड़ना चाहिए।
(७) अभ्यासमें पूरी श्रद्धा रहनी चाहिए।

यह है अभ्यास-योगकी साधना !

•

धर्मनिष्ठकी धारणा

जो धर्मात्मा होता है, वह ईश्वरपर विश्वास रखता है कि प्रभु न्यायकारी और दयालु भी हैं। वे जीवको दुःख देते हैं, वह बिना उसके अपराधोंके नहीं देते। चाहे वे अपराध पूर्वजन्मके हों चाहे इस जन्मके। वे उसकी दयापर विश्वास रखते हुए बिना शिकायत किये उनसे प्रार्थना करते हैं कि प्रभो ! आपने जो दुःख दिया है, वह न्याय ही किया है। अब आपसे यही बिनती है कि कृपा करके मुझे बल, बुद्धि तथा धैर्य दीजिये, ताकि मैं इस दुःखको सहार जाऊँ। यह आपकी मेरे ऊपर बड़ी कृपालुता होगी।

●

दो मनोहर नाम !

राम कृष्ण दो नाम मनोहर, मत भूलो दिन - रैन।
इन नामोंके सुमिरणसे, मिलता शाश्वत सुख - चैन ॥ १ ॥

राम-कथा रामायण है, इस भव-सागरमें पोत।
मोह-निशामें केशव-वाणी गीता, करे उदोत ॥ २ ॥

बढ़ता राम-नाम-भूषणसे, मृण्मय तनका मोल।
कर देता पावन जीवनको, कृष्ण-कृष्ण यह बोल ॥ ३ ॥

राम - कृष्णके चिन्तनसे, सधते जीवनके काम।
चिन्तन वैसा जो निश्चय हो, भक्ति-युक्त निष्काम ॥ ४ ॥

रामनाम रट शबरीने, पाया दुर्लभ सुरधाम।
राम-भक्तिसे भूषित वह, रामायणमें अंकित नाम ॥ ५ ॥

लाज बचायी केशवने, सुन द्रुपद-सुताकी आर्त पुकार।
किया ग्राहसे गजका रक्षण, कर गज की पूजा स्वीकार ॥ ६ ॥

नश्वर तनमें राम-कृष्णका कीर्तन यदि करते हैं प्राण—
पाते परम अमरता मानव, युग-युगमें उनका कल्याण ॥ ७ ॥

राम-कृष्ण दो नाम जिन्हें प्रिय, वे न मोह-ममताके दास।
मिलता उन्हें परम पद, रखते भक्ति-भावमें वे विश्वास ॥ ८ ॥

—— श्री जगन्नाथ मिश्र गौड 'कमल' ——

अजनाभ और भरत

डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल,

यह सुविदित है कि जैनधर्मकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भगवान् महावीर तो अन्तिम तीर्थंकर थे। मिथिला प्रदेशके लिच्छवी-गणतन्त्रसे, जिसकी ऐतिहासिकता निर्विवाद है, महावीरका कौटुम्बिक सम्पर्क था। उन्होंने श्रमण-परम्पराको अपनी तपश्चर्या द्वारा एक नयी शक्ति प्रदान की, जिसका सम्मान दिगम्बर-परम्परामें पाया जाता है। भगवान् महावीरसे पूर्व २३ तीर्थंकर और हो चुके थे। उनके नाम और जन्म-वृत्तान्त जैन-साहित्यमें सुरक्षित हैं। उन्हींमें भगवान् ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे जिसके कारण उन्हें 'आदिनाथ' कहा जाता है। जैन-कलामें उनका अंकन घोर तपश्चर्याकी मुद्रामें मिलता है। ऋषभनाथके चरितका उल्लेख श्रीमद्भागवतमें भी विस्तारसे आता है और यह सोचनेपर बाध्य होना पड़ता है कि इसका कारण क्या रहा होगा? भागवतमें (५.४.९) ही इस बातका उल्लेख है कि महायोगी भरत ऋषभदेवके शत-पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे और उन्हींसे यह देश भारतवर्ष कहलाया।

भागवत (११.२.१७)के अनुसार भरत भी परम भागवत और विष्णुके भक्त थे। अतएव एक ओर जहाँ जैनधर्ममें उनका अत्यन्त सम्मानयुक्त पद था, वहीं दूसरी ओर भागवत-धर्मानुयायी जनता भी उन्हें अपना आराध्य मानती थी। इतना ही नहीं, ऋषभ और भरत दोनोंका वंश-सम्बन्ध उन्हीं स्वायम्भुव मनुसे कहा गया है जिनमें और भी ऋषियोंके वंश और राजर्षियोंकी परम्पराएँ प्रख्यात हुईं। स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत, प्रियव्रतके पुत्र नाभि, नाभिके ऋषभ और ऋषभदेवके सौ पुत्र हुए, जिनमें 'भरत' ज्येष्ठ थे। ये ही नाभि 'अजनाभ' भी कहलाते थे, जो अत्यन्त प्रतापी थे। इन्हींके नामपर यह देश 'अजनाभवर्ष' कहलाता था। प्रियव्रतने अपने सात पुत्रोंको सप्त-द्वीपोंका राज्य दिया था, जिनमें अग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राज्य मिला। अग्नीध्रकी भार्या पूर्वचिति अप्सरासे नौखण्डोंमें राज्य करनेवाले नौ पुत्रोंका जन्म हुआ। उनमें ज्येष्ठपुत्र नाभि थे, जिन्हें अजनाभ-खण्डका राज्य प्राप्त हुआ। यही अजनाभ-खण्ड पीछे 'भरतखण्ड' कहलाया। नाभिके पौत्र भरत उनसे भी अधिक प्रतापी चक्रवर्ती हुए। यह मूल्यवान् ऐतिहासिक परम्परा किसी प्रकार पुराणोंमें सुरक्षित रह गयी है।[1]

अग्नीध्रके ज्येष्ठपुत्र नाभिके पुत्र ऋषभ हुए। इन्हीं ऋषभके पुत्र भरत हुए। भरतको राज्य देकर ऋषभदेवने प्रव्रज्या ग्रहण की। जम्बूद्वीपके दक्षिणमें हिम नामका वर्ष भरतको मिला था, जो कालान्तरमें उनके नामसे 'भारतवर्ष' कहलाया। इस तरह स्पष्ट है कि पुराणोंमें भारतवर्षके नामका सम्बन्ध नाभिके पौत्र और ऋषभके पुत्र भरतसे है (वायुपुराण ३३.५२)। दुःष्यन्त और शकुन्तलाके पुत्र भरतसे 'भारत' नामका सम्बन्ध पुराणकारोंने नहीं कहा है। भागवतमें भी ऋषभपुत्र महायोगी भरतसे ही 'भारत' नामकी ख्याति मानी गयी है। ●

१. जैन-साहित्यका इतिहास : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पूर्वपीठिका, पृष्ठ ८।

उत्तरायण का प्रथम चरण : मकर-संक्रमण

श्री जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग

एम० ए०, साहित्याचार्य

भारतीय वर्ष पाँच प्रकार के माने जाते हैं : १. सौर (३६५ दिन) २. बार्हस्पत्य (३३१ दिन), ३. सावन (३६८ दिन), ४. चान्द्र (३५४ दिन) और नाक्षत्र। इनमें सौरवर्ष विवाहादि मांगलिक कार्य, व्रत और यज्ञ-यागादिके लिए प्रशस्त माना गया है। आचार्य ऋष्यश्रृंग कहते हैं :

विवाह-व्रत-यज्ञेषु सौरमानं प्रशस्यते।

भारतीय सौर-वर्ष दो 'अयनों' में विभक्त है। 'अयन' का अर्थ है, सूर्य जिस दिशासे प्रयाण करे, वह मार्ग। सौर-वर्षमें सूर्यकी गति दो प्रकारकी होती है : उत्तरकी ओर एव दक्षिणकी ओर। इसी आधारपर वर्षमें दो 'अयन' होते हैं : 'उत्तरायण' एवं दक्षिणायन'।

'अयन' एवं 'ऋतुचक्र' का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सौरर्तुत्रितयं प्रदिष्टमयनम् इस दीपिका-वचनके अनुसार तीन सौर ऋतुओंका एक 'अयन' होता है। मीनमेषयोः मेषवृषयोर्वा वसन्तः इस बोधायनकी उक्तिके अनुसार यदि मीनसंक्रान्तिसे वसन्तादि सौर ऋतुओंका प्रारम्भ माना जाय तो उत्तरायणमें तीन ऋतुएँ पड़ती हैं : शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म और दक्षिणायनमें तीन ऋतुएँ : वर्षा, शरद् और हेमन्त। प्रत्येक ऋतुकी सत्ता दो-दो मासोंमें मानी जाती है।

'संक्रान्ति' शब्दका सामान्य अर्थ है, सूर्यका एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश। प्रत्येक संक्रान्तिमास 'सौर-मास' कहलाता है। 'निर्णयसिन्धु'कारने मीन, मेष आदि संक्रातिमासोंको ही चैत्र, वैशाख आदि संज्ञाएँ दी हैं।

मकरमासको हम उत्तरायणका प्रथम चरण कह सकते हैं। यह मास 'सविता' का मास है, जिसका द्वादश आदित्योंमें अन्यतम स्थान है। 'आदित्य' नाम उनकी माता अदितिके सम्बन्धसे पड़ा है। यास्क कहते हैं : अदितेः पुत्र इति वा।

ऋग्वेदकी निम्नलिखित ऋचामें मित्र, वरुण, अर्यमन्, भग, वरुण, दक्ष और अंश इन छः आदित्योंका उल्लेख है।

'तैत्तिरीय ब्राह्मण' आठ अदितिपुत्रोंका इस प्रकार उल्लेख करता है :

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान्। 'शतपथ ब्राह्मण' में द्वादश आदित्योंकी तद्रूपता द्वादश सौर-मासोंके साथ इस प्रकार स्थापित की गयी है :

ते द्वादशादित्या असृज्यन्त। कतम आदित्या इति ?
द्वादश मासाः, संवत्सरस्यैत आदित्याः।

किन्तु इन आदित्योंमें 'सविता' का कहीं उल्लेख नहीं है। वैदिक वाङ्मयमें 'सविता' द्युस्थानीय स्वतन्त्र देवता है। सायणके अनुसार उदयके पूर्व सूर्यको 'सविता' और उदयसे अस्ततक 'सूर्य' कहते हैं: उदयात् पूर्वभावी सविता, उदयास्तमयवर्ती सूर्य इति। यास्कके अनुसार 'सविता' का काल अन्धकारनिवृत्तिके अनन्तर है:

सविता व्याख्यातः। तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्णरश्मिर्भवति।

'सविता' प्रधानतया 'हिरण्मय' देवता हैं। वे 'हिरण्याक्ष', 'हिरण्यपाणि' और 'हिरण्यजिह्व' हैं। गायत्रीमन्त्र इसी 'सविता' की स्तुति करता है। ऋग्वेदमें सविताका १७० बार उल्लेख हुआ है।

सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥

इस पद्मपुराणोक्त मंत्रसे 'सविता' को प्रतिदिन अर्घ्य देनेका माघमासमें विधान है। संक्रान्तिके दिन 'सविता' को दुग्धस्नान करानेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

चान्द्र-मासके अनुसार यद्यपि मघा नक्षत्रसे युक्त माघी पूर्णिमा जिस मासमें हो, वह माघमास माना जाता है; तथापि सौरमानके अनुसार मकरमासको ही 'माघमास' माना जाता है। 'विष्णुपुराण' इन तीस दिनोंको अत्यन्त पावन मानता है:

पुण्यान्यहानि त्रिंशत् तु मकरस्थे दिवाकरे।

चार प्रकारकी संक्रांतियाँ होती हैं। 'विष्णुपद': वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भसंक्रांति। 'षडशीति': मिथुन, कन्या और धनुसंक्रांति। 'विषुव': मेष और तुला संक्रांति। 'अयन': कर्क और मकरसंक्रांति। 'मकरसंक्रांति' अयन-संक्रांतिके अन्तर्गत आती है।

पुण्यकाल: दिनमें सूर्यसंक्रमणके अनन्तर चालीस नाडियाँ, घटिकामात्र दिनमें संक्रांति लगनेपर वह घटिका और रात्रिमें संक्रांति लगनेपर द्वितीय दिन, विशेषतः उसका पूर्वार्ध पवित्र माना जाता है। उसमें भी सूर्योदयके निकटकी पाँच नाडियाँ अत्यन्त पवित्र मानी गयी हैं। अतः इसी पुण्यकालमें संक्रांतिनिमित्तक स्नान-दानादि विहित हैं।

उक्त 'अयनसंक्रांति'में तीन दिवस उपवासका विधान है। कमसे कम संक्रांतिके दिन उपवास अवश्य करना चाहिए। यह उपवास अपत्यहीनको नहीं करना चाहिए। मकरसंक्रांतिमें अग्नि एवं लकड़ियोंका दान अवश्य करना चाहिए। अधिकारी व्यक्तिको उक्त दिन बिना पिण्डदानके श्राद्ध करना चाहिए।

मकरमासमें ही माघस्नानका विधान है। इस विषयमें 'विष्णुपुराण कहता है:

तुला-मकर-मेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत्।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम्॥

अर्थात् तुला, मकर और मेषसंक्रान्तियोंमें प्रातःस्नान अवश्य करना चाहिए। विशेषतः माघस्नानके समय हविष्यान्नग्रहण एवं ब्रह्मचर्यपालन महाफलप्रद होता है।

अधिक माघ रहनेपर दो महीनेतक स्नानादि एवं अन्य नियमोंका पालन करना चाहिए। प्रयागमें गंगा, यमुना, संगममें माघस्नानका विशेष महत्त्व है। 'पद्मपुराण'के अनुसार प्रयागमें माघस्नान करनेपर सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। काशीवासियोंके लिए यह सम्भव न होनेपर प्रयागतीर्थंपर स्नान करना चाहिए, जो दशाश्वमेधघाटके निकट है।

माघमास और तिल :

उत्तरायणके प्रथम चरण इस मकरसंक्रमण या माघमासमें छः प्रकारसे तिलका उपयोग किया जाता है, जैसा कि वचन है :

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशनाः॥

तिलस्नान : जलके तारतम्यसे माघस्नानके फलमें भी अन्तर होता है। उष्णोदक, कूपोदक, तडाग, नदी, महानदी, महानदीसंगम, गङ्गा एवं गङ्गा-यमुनासंगममें माघस्नान उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माना गया है। समुद्रस्नान भी माघमें प्रशस्त माना गया है। किन्तु सर्वत्र प्रयागतीर्थंका अवश्य स्मरण करना चाहिए। यह स्नान कृष्णतिलमिश्रित जलसे करना चाहिए। इसीका अर्थ है 'तिलस्नान'।

तिलोद्वर्तन : यह स्नान सफेद तिलोंका उबटन लगाकर करना चाहिए।

तिलहोम : यह तीन प्रकारका होता है : १. अयुत होम, २. लक्षहोम और ३. कोटिहोम। कुण्ड मण्डप-निर्माणादिके साथ इसका प्रयोग कौस्तुभ, मयूख आदि ग्रन्थोंमें दिया गया है। 'पद्मपुराण'के अनुसार माघमासमें प्रतिदिन तिलसमन्वित आज्यसे हवन करना चाहिए। नारदीय वचनानुसार माघस्नानके व्रतकी समाप्ति तिल, चरु और आज्यकी अष्टोत्तरशत आहुतियोंके साथ करनी चाहिए। 'अर्धोदय योग' (माघी अमावस्या) के अवसरपर साढे तीन सौ 'द्रोण' परिमित तीन तिलपर्वतोंसे हवनकर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशकी सुवर्णमयी प्रतिमाएँ ब्राह्मणको दान करनी चाहिए।

तिलोदक : तिलयुक्त जलसे देवकार्य एवं पितृकार्य करने चाहिए। श्वेत तिलोदकसे देवपूजा, सन्ध्यावन्दन आदि देवकार्य और कृष्ण तिलोदकसे तर्पण आदि पितृकार्य करने चाहिए। 'भीष्माष्टमी' (माघशुक्लाष्टमी) के दिन तिलोदकसे भीष्मपितामहको जलाञ्जलिदान विहित है। माघकृष्ण चतुर्दशीको तिलोदकसे यमराजको जलाञ्जलि देनी चाहिए।

तिलभोजन : मासमासमें नानाविध तिलनिर्मित व्यञ्जनोंको भोजनमें सम्मिलित करनेका विधान है। मार्गशीर्ष माससे प्रारम्भ होनेवाले 'वार्षिक रविवार व्रतके अन्तर्गत माघमासके प्रति रविवारको जो व्रत किया जाता है, उसकी पारणा मात्र तीन मुठ्ठी तिलोंसे की जाती है।

तिलदान : नारदके अनुसार माघस्नानार्थीको प्रतिदिन तीन भाग तिल और एक भाग शर्कराका दान करना चाहिए। साथ ही व्रतकी समाप्ति दम्पतीको शर्करामिश्रित तिलके तीस मोदक देकर करनी चाहिए। 'स्कन्दपुराण' के अनुसार उत्तरायण लगनेपर तिलमयी धेनुका दान करनेवाला अभीष्ट फल प्राप्त करता है। 'विष्णुधर्मपुराण'के अनुसार उत्तरायणमें

तिलमय वृषभका दाता रोगमुक्त होता है। संक्रांतिके अवसरपर सुवर्ण रखकर 'प्रस्थ' परिमित तिलोंसे पूर्ण ताम्रपात्रका दान प्रशस्त माना गया है। तिलचतुर्थी (माघ शुक्ल ४), रथसप्तमी (मा. शु. ७), षट्तिला एकादशी (मा. शु. ११), भीष्मद्वादशी (मा. शु. १२) और माघी पूर्णिमाको तिलका छः प्रकारसे उपयोग किया जाता है। 'भीष्मद्वादशी' तो तिलोत्पत्तिका दिन ही माना गया है। इस प्रकार माघमासभर तिलका विशेष महत्त्व है।

मकरसंक्रांति एवं शिवपूजा :

संक्रांतिके दिन शिवपूजाका विशेष महत्त्व है। 'धर्मसिन्धु'के अनुसार इसका प्रयोग इस प्रकार है। एतदर्थ शिवव्रतार्थीको पूर्वदिन उपवास रखना चाहिए। संक्रांतिके दिन तिलोद्वर्तन, तिलस्नान एवं तिलतर्पण कर शिवपूजन करना चाहिए। पूजाके प्रारम्भमें शिवलिङ्गका मर्दन गोघृतसे करना चाहिए। अनन्तर शुद्धोदकसे प्रक्षालन करना चाहिए। वस्त्रादिके द्वारा उनका यथाविधि पूजन करनेके उपरान्त उन्हें सुवर्ण, हीरक, नीलम, पद्मराग एवं मौक्तिक इन पञ्चरत्नोंको अथवा केवल सुवर्णको समर्पित करना चाहिए। पश्चात् सुवर्णसहित साक्षत तिलोंका समर्पण करना चाहिए। इस अवसरपर शिवको घृताभिषेक महाफलप्रद माना गया है। उत्तरपूजामें वितान, चामर आदि समर्पित करने चाहिए। इस अवसरपर तिलदान, तिलहोम, ब्राह्मणभोजन, यतिभोजन आदिका भी विधान है। इस व्रतकी पारणा तिलसहित पञ्चगव्यका प्राशनकर करनी चाहिए।

अनध्याय : इस अवसरपर दिनमें संक्रांति लगनेपर उस दिन, पूर्वरात्रिमें एवं आगामिनी रात्रिमें अनध्याय (अध्ययनावकाश) माना जाता था। रात्रिमें सूर्य-संक्रमण होनेपर उस रात्रिमें, पूर्व दिन और आगामी दिनमें अध्ययनावकाश विहित था।

अयन-संक्रान्तिका दिन एवं 'करि' नामक द्वितीय दिन शुभकार्योंके लिए वर्ज्य माना जाता था। अर्धरात्रिके पूर्व संक्रांति लगनेपर वह दिन एवं परवर्ती दिन वर्ज्य माने जाते थे। अर्धरात्रि अथवा उसके बाद संक्रांति लगनेपर द्वितीय एवं तृतीय दिन शुभकार्योंके लिए वर्जित था।

वैसे सम्पूर्ण उत्तरायण ही देवालय, गृह आदिके निर्माणके लिए और गृहप्रवेश, चौल, व्रतबन्ध, विवाह आदि मांगलिक कार्योंके लिए प्रशस्त माना गया है। इस विषयमें 'रत्नमाला' कार कहते हैं :

गृहप्रवेशस्त्रिदशप्रतिष्ठा विवाह-चौल-व्रतबन्धपूर्वम् ।
सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद् गर्हितं तत् खलु दक्षिणे च ।।

उत्तरायण देवोंका अयन माना जाता है जब कि दक्षिणायन पितरोंका। इस उत्तरायणमें मरनेवाले सीधे ब्रह्मलोक जाते हैं। भीष्मपितामह इसी उत्तरायणकी प्रतीक्षामें शरशय्यापर पड़े रहे और उत्तरायणमें ही उन्होंने प्राण त्यागा। सभी धर्मकार्य, मांगलिक कार्य इसी अयनमें होनेसे इस कालखण्डका अपनेमें स्वतन्त्र महत्त्व है।

●

मांसभक्षण-मीमांसा

श्री जानकीनाथ शर्मा

☆

मांसभक्षणका हमारे शास्त्रोंमें सर्वत्र निषेध किया गया है। मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि, मा हिंसीः सर्वा भूतानि (तैत्तिरीय-संहिता-आर०) आदि अनेक वचनोंसे श्रुति भी इसका प्रत्यक्ष परिवर्जन करती है। पुराणों द्वारा ही वेदार्थ परिपुष्ट करनेकी पद्धति है : इतिहास-पुराणाभ्यां वेदार्थं परिबृंहयेत् और पुराणोंमें तो मांसभक्षणकी बड़ी ही तीक्ष्ण आलोचना देखी जाती है। भागवत पुराणमें तो वैदिक यज्ञविधिके नामपर होनेवाली हिंसाकी भी जगह-जगहपर प्रबल आलोचना तथा तीव्रभर्त्सना की गयी है। काशीखण्डका स्पष्ट कथन है कि 'उभयत्र (दोनों ही लोकोंमें) दुःखद मांसभक्षणको बार-बार धिक्कार है। जो पापी स्वार्थसे अन्धा होकर अपने लिए मांस पकाता है, उसे पशुके रोमोंके तुल्य वर्षोंतक नरकमें निवास करना पड़ता है। जो खोटी बुद्धिवाले पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंको पुष्ट करते हैं, वे कल्प-पर्यन्त नरक भोगकर पुनः इसी लोकमें उन्हींके द्वारा भक्षण किये जाते हैं। अतः प्राण कण्ठ-तक आ जायें, तब भी मांस नहीं खाना चाहिए' :

लोकद्वये हि यद् दुःखं धिक् तन्मासंस्य भक्षणम् ।
यः स्वार्थं मांसपचनं कुरुते पापमोहितः ॥
यावन्त्यस्य तु रोमाणि तावत्स नरके वसेत् ।
परप्राणैस्तु ये प्राणान् स्वान् पुष्यन्ति हि दुर्धियः ॥
आकल्पनरकान् भुंक्त्वा ते भुज्यन्तेऽत्र तैः पुनः ।
जातु मांसं न भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

(काशीखण्ड ३.५०-५३)

इसी ग्रन्थमें अन्यत्र कहा गया है कि जो मूर्ख अपने शरीरको पुष्ट करनेके लिए जीव-हिंसा करता है, उस दुराचारीको इहलोक या परलोकमें कहीं भी सुख नहीं मिलता। केवल वध करनेवाला ही नहीं, प्रत्युत मांस खानेवाले, अनुमति देनेवाले, पकानेवाले, खरीदने-वाले, बेचनेवाले, मारनेवाले, परोसनेवाले तथा मरवानेवाले सभी आठों ही हत्यारे कहे गये हैं :

यो जन्तूनात्मपुष्ट्यर्थं हिनस्ति ज्ञानदुर्बलः ।
दुराचारस्य तस्येह नामुत्रापि सुखं क्वचित् ॥

भोक्ताऽनुमन्ता संस्कर्ता क्रय-विक्रय-हिंसकाः।
उपहर्ता घातयिता हिंसकाश्चाष्टधाः स्मृताः॥

काशीखण्ड (४०.२१-२२,) मनुस्मृति (५.५१,) बृहद्विष्णुस्मृति (५१.६८) महाभारत, अनुशासनपर्व (११५.४५) आदि कितने ही ग्रन्थोंमें मांसभक्षणकी घोर निन्दा है।

मांस शब्दका अर्थ

मांससम्बन्धी सारे ही शास्त्रार्थ या बखेड़ेको यह 'मांस' शब्द ही समाप्त कर देता है। इस शब्दका अर्थ ही है : मां = मुझको, और स = वह [खायेगा उस लोकमें]। यह निरी कल्पना नहीं, बल्कि एक ध्रुव सत्य है। इसका वर्णन सर्वप्रथम उन्हीं भगवान् मनुने किया है, जिनके विषयमें स्वयं भगवती श्रुतिने हो चार स्थलोंमें यद् वै किंच मनुरवदत्तद्भेषजम् इत्यादि कहकर मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। (देखिये—काठकसंहिता ११.५, मैत्रायणीय-संहिता १.१.५, तैत्तिरीय-संहिता २.२.१०.२, तथा ताण्ड्य ब्राह्मण २३.१९.२७। मनुजीका कथन है :

मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मासत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥[1]

(मनु० ५.५५)

इसका समर्थन करते हुए अन्य स्मृतियों तथा पुराणोंने भी बार-बार इस श्लोकका उल्लेख किया है (देखिये : विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.२५३-२०१, वृहद विष्णुस्मृति ५१-७८, वायुपुराण ८८.२३ तथा महाभारत अनुशासनपर्व २१३ आदि)। अपने यहाँ मांसभक्षण कितना निन्द्य था, इसका यह मांसशब्दकी व्युत्पत्ति ही पर्याप्त प्रमाण है। सांख्य तथा योगादि-दर्शनोंमें अहिंसाको ही परम शुद्ध, अशुक्लाकृष्ण धर्म बतलाया गया है। महाभारत अनुशासन-पर्वादिमें बार-बार अहिंसाको ही परम धर्म बतलाया गया है :

अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते॥ (११५.२३)
यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम्।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे।
एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः पुरा॥

(वहीं, अनुशा० पर्व० ११५.६.७ आदि) शास्त्रोंमें लगातार सौ वर्षोंतक निरन्तर अश्वमेधयज्ञ करनेवालेसे भी निरामिषभोजीको श्रेष्ठ बतलाया गया है :

---

१. इस जन्ममें जिसका मांस खाता हूँ, वह दूसरे जन्ममें मुझे खायेगा, यही मांसका मांसत्व मनीषी जन बताते हैं।

प्रत्यहमश्वमेधेन शतवर्षाणि यो यजेत्।
अमांसभक्षको यश्च तयोरन्यो विशिष्यते ॥
यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः।
वर्जयेन्मधुमांसं च सममेतद् युधिष्ठिर ॥

(महाभारत अनुशा० ११५.८, काशीखण्ड ४०-२३,
विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.२६८.६, बृहद् विष्णुस्मृति ५१.७६ आदि ।)

किन्तु खेद है कि आजकल अहिंसाका प्रयोग केवल राजनीति, कूटनीति आदिमें ही किया जाता है। निरपराध, निरीह, मृग, मीन, शश आदि जीवोंकी हिंसा हिंसा नहीं समझी जाती। पक्षियोंके अण्डेको भी फलाहार घोषित किया जा रहा है। अधिक क्या कहा जाय, गोहत्या भी रोकने अथवा घटानेके बदले अनुदिन बढ़ानेमें ही सारी शक्ति लगायी जा रही है।

कतिपय शंकाएँ

कुछ लोगोंका कहना है वाममार्गमें मद्य-मांसका विधान है। पर विचारसे यह बात भी ठीक नहीं जंचती ; क्योंकि सभी तन्त्रग्रन्थोंमें वाक्-संयम आदिको मांस-साधन कहा गया है :

मा शब्दाद्रसना ज्ञेया तदशान् रसनाप्रियान्।
सदा यो भक्षयेद्देवि स एव मांससाधकः ॥
मनसा चेन्द्रियगणं संयोज्यात्मनि योगवित्।
मांसाशी स भवेद्देवि शेषाः स्युः प्राणिहिंसकाः ॥
पापपुण्यपशून् हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परं शिवे नयेच्चित्रं पलाशी स निगद्यते ॥

कुलार्णव ५.१०-११, आगमसार आदि।)। भागवत (११.५.११–१३) आदिमें सुस्पष्ट ही यज्ञमें भी पशुका स्पर्श ही 'आलभन'का अर्थ बतलाया गया है, हिंसा नहीं। नारदपुराण, हेमाद्रि, निर्णसिन्धु आदिमें तो वह सभी वर्ज्य बतलाया गया है।

मांसशास्त्रार्थमें उपरिचरवसुकी कथा

महाभारत शान्तिपर्व, वायुपुराण, स्कान्द वैष्णवखण्ड, वासुदेव-माहात्म्य तथा वासुदेव-रसानय एवं मत्स्यपुराण (अध्याय १४२) आदिमें उपरिचर वसुकी कथा विस्तारसे आती है। स्कन्दपुराणमें तो यह कथा कई अध्यायोंमें आयी है। उपरिचर वसुको साक्षात् भगवान् वासुदेव-ने ही सम्पूर्ण विश्वका साम्राज्य प्रदान किया था। उसका इन्द्रदम विमान कभी पृथ्वीका स्पर्श नहीं करता था। एकबार इन्द्र तथा देवताओंके साथ मुनियोंका मांसपर शास्त्रार्थ हुआ। देवता लोग अज-बलिका पक्ष ले रहे थे। मुनियोंका कहना था कि अजका अर्थ छाग नहीं, 'औषधि' है। इसी बीच विमान द्वारा उपरिचर वसु भी वहीं आ गया। इन्द्रादि देवताओंका वह मित्र था। उसे इन्द्रने निर्णेता बनानेका प्रस्ताव रखा। मुनिगण भी मान गये। राजाने

इन्द्रका पक्ष लेकर 'अजा' का अर्थ 'छाग' बतला दिया। पर ऐसा कहते ही वह मुँहके बल अपने आकाशगामी विमानसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। इतना ही नहीं, वह भूमिके भीतर भी जाकर दब गया :

तस्मिन्नेव क्षणे राजा वाग्दोषादन्तरिक्षतः।
अधः पपात सहसा भूमिं च प्रविवेश सः॥

(स्कान्द, वैष्णव, वासुदेव रसायन ६.४७, महाभारत शान्तिपर्व, ३३६, मत्स्यपुराण १४२.२४.२५ आदि।)

निरन्तर भगवत्स्मृति रहनेसे उस भूविवरमें भगवान् उसके पास आये और गरुड़ द्वारा खिचवोकर उसे पृथ्वीसे वाहर निकाला। इस तरह वेदका मुनियों द्वारा निश्चित अर्थ बोजपरक ही था।

मांससे शक्तिवर्धनकी बात सिद्ध नहीं होती। हाथी, गैंड़, घोड़े आदि निरामिष पशु कुत्ते, शृगालको कौन कहे, शेरसे भी बलिष्ठ होते हैं। गैंडेपर शेरकी कोई प्रभुता नहीं चलती। बैल या घोड़े भी निरामिष होते हुए शेरसे अधिक बोझ ढोते एव काम करते हैं। शेर उन वोझोंको सात जन्ममें नहीं खींच सकता। शिकारियोंका अनुभव है कि रोटीपर रहनेवाले कुत्ते भी अधिक कुशल तथा तेज होते हैं। शेर १२ वर्षमें वूढ़ा हो जाता है, पर हाथी आदि १२० वर्षतक जीवित रहते हैं। मांसाहारियोंका रूप तथा 'स्वर दोनों ही भद्दे होते हैं। पियागोरस, प्लूटाक, सिनेका, जूलियस सीजर आदि सभी लोग मांससे परहेज रखते थे। ईरानी बादशाह साइससने अपनी सेनासे चवेना चबवाकर चारों ओर विजयका डंका वजवाया था। हिटलर भी कभी मांस नहीं खाता था। डाक्टरोंका अनुमान है कि कैन्सर, एपेण्डिक्स आदि रोग भी अधिकतर मांसाहारियोंको ही होते हैं।

नारदादि सिद्धोंकी दृष्टिमें शास्त्रोंकी ही अधिक महिमा है। शरीरके रोगोंकी दृष्टिका कम ध्यान रखते हुए परलोकका जहाँ दीर्घकालतक निवास होता है, अधिक ध्यान रखकर धर्मका विधान किया गया है। भागवतमें उनके द्वारा प्राचीनबर्हिके उपदेशमें बतलाया गया है कि यज्ञमें हिंसित पशु उनसे बदला लेनेके लिए आकाशमें सींग ताने खड़े थे। स्कन्ध ५.२५, ६ ठे स्कन्धके आरम्भमें तो शुकदेवजी इसे अटल सत्य कहते हैं तथा ५ वें स्कन्धके अन्तमें मांसाशियोंकी भीषण नारकीय यन्त्रणाका रोमहर्षण चित्र उपस्थित करते हैं।

विशेष ध्येय : पुराणों तथा स्मृतियोंमें मांसनिन्दाके बहुत लम्बे प्रकरण ही विस्तार देखना हो तो देखें : महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ११३ से ११७ तकके ५ अध्याय; ब्रह्म-पुराण अध्याय २१६; विष्णुधर्म ५१; विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३.२५३ अ० तथा ३.२६८ वाँ अध्याय; महा० शान्तिपर्व पृ० ५०० पूना-संस्करण; काशीखण्ड अ० ३ तथा ४०; वायुपुराण अध्याय ८८; ब्रह्महारीतस्मृति एवं बृहत्पाराशर स्मृतियाँ; स्कन्दपुराणका वैष्णवखण्ड, विशेष-कर, वासुदेव-माहात्म्य; श्रीमद्भागवत स्कंध ४, अध्याय २५ से २९; स्कंध ७ अध्याय १५ श्लोकसे ११; स्कन्ध ११ अध्याय ५ श्लोक १० से २०, अध्याय २१ आदि।

●

श्री श्यामा-सुषमा

नव-निकुञ्ज कल्पद्रुमके तर मण्डप एक बन्यौ री आली।
तहाँ मणिजटित कनक-पीठ पै राजहि भानु-भूपकी लाली ॥ १ ॥

कनक-सम कमनीय कलेवर जगमगात अति सोभीसाली।
मणिमय-दीप-सिखाकी मानहुँ झलमल-झलमल जोति निराली ॥ २ ॥

सुठि सुदेस पै चारु चन्द्रिका, तामें झलमलात रतनाली।
असित केस-कबरी सुठि सोहत, ग्रसत बिधुहिं जिमि नागिन काली ॥ ३ ॥

भाल-बिन्दु जिमि भौम इन्दु पै, नयननकी चितवन मतवाली।
अंजन-रञ्जित चंचल चख सखि ! पटतर होहिं न खंजन-लाली ॥ ४ ॥

काम-कमान सरिस दोउ भौहैं मोहैं मोहनको मन आली।
अरुन अधर बेसरकी झलमल थल-कमलहुँकी लाजत लाली ॥ ५ ॥

कुण्डलकी कल कान्ति अनूपम उझलत मुखमण्डल उजियाली।
मुदुताकी मनमोहिनि मूरति, लखि-लखि तृन तोरहिं बनमाली ॥ ६ ॥

अंग-अंग उलझत अनंग छबि, सरसब जासों प्रीति-प्रनाली।
सुन्दर स्याम सिहाहिं मन-हि-मन निरखि-निरखि सो छबि रससाली ॥ ७ ॥

कनक-कान्ति-कमनीय सुतनुपै सोहत नील निचोल निराली।
जलद-पटल-झम्पित चपला ज्यों चम-चम चमचमात द्युतिसाली ॥ ८ ॥

अंग-अंग मणिमय आभूषन झलमलाहिं ज्यों नभ नखताली।
अथवा अमल-कमल-कलिका पै सलिल-सीकरन सोह प्रनाली ॥ ९ ॥

पद-पंकज पायलकी रुनझुन, सुनि-सुनि मारहुँकी मति घाली।
मन्मथ-विजय-घोष करिबेको माधवकी जनु वाद्य-प्रनाली ॥१०॥

सकल सिंगार-सार श्रीस्यामा-सुषमा हूँ की सुषमासाली।
जगनायक हूँ पायक जिनके तिनकी किमि कहिये बिरुदाली ॥११॥

जनम-जनम सों साध सँजोई पाऊँ तिनकी प्रीति-प्रनाली।
चरन-चेरि निज जानि कृपा करि देहु सरन-सुख अति रससाली ॥१२॥

—श्री 'सनातन'

जिसकी शतसांवत्सरी मनायी जा रही है !

मथुराका राजकीय संग्रहालय

श्री नारायण दत्तात्रेय कालेकर

संग्रहालय : वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय

प्रातः स्मरणीय सप्तपुरियोंमें मथुराका दूसरा स्थान है। यह नगर उत्तर प्रदेशके पश्चिममें यमुनानदीके पश्चिम किनारेपर बसा हुआ है, जिसका अस्तित्व प्राचीन कालसे आजतक अखण्ड चला आ रहा है। प्राचीन समयमें इसे 'मधुरा' कहते थे; क्योंकि यहाँ 'मधु' नामक एक दैत्य राज्य करता था। इसके बाद अयोध्याके राजा रामके भाई शत्रुघ्नने मधुके पुत्र लवणसे इस नगरीको छीन लिया। इसके उपरान्त चन्द्रवंशी राजाओंके शासनकालमें मथुरा और उसके आस-पासका प्रदेश, जिसे कभी 'शूरसेन' कहा जाता था, इसलिए महत्त्वपूर्ण हो गया कि धार्मिक दृष्टिसे पूर्णावतार माने जानेवाले भगवान् श्रीकृष्णका यह जन्मस्थान बना। श्रीकृष्णका इस क्षेत्रसे सम्बन्ध हो जानेके कारण भागवत-धर्मानुयायी वैष्णवोंका यह प्रधान क्षेत्र बन गया।

वैष्णवोंके समान ही इस स्थानसे बौद्धोंका भी निकटतम सम्बन्ध है। बुद्ध-जन्मके पूर्वसे ही भारतके १६ जनपदोंमें मथुराकी भी गणना की जाती थी। ऐसी अनुश्रुति है कि भगवान् बुद्ध भी एकबार मथुरा आये थे।

बौद्धोंके समान जैन भी इस नगरके महत्त्वको स्वीकार करते थे। यह स्थान प्राचीन समयसे ही सुपार्श्वनाथ और नेमिनाथ तीर्थंकरोंसे सम्बद्ध होनेके कारण उनका यहाँ प्राचीन स्तूप भी रहा।

इस प्रकार इस नगरीमें तीनों धर्मोंका त्रिवेणी-संगम रहा है। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंके ग्रन्थमें मथुराको 'ऋद्धा, स्फीता, क्षेमा, सुभिक्षा और बहुजन-मनुष्या' कहा गया है। पुरानी स्मृति और ऐश्वर्यके प्रचुर प्रमाण यहाँ सुरक्षित हैं।

मथुराकी कलाकृतियोंमें पत्थरकी प्रतिमाओंके अतिरिक्त मृण्मूर्तियोंका भी समावेश है। मथुरा और उसके आस-पास दस मीलके परिसरमें कंकाली-टीला, भूतेश्वर-टीला, जेल-टीला एवं सप्तर्षि-टीला आदि महत्त्वपूर्ण टीलोंके अतिरिक्त भी मुसलमानोंके आक्रमणके भयसे जनताने अनेक देव-प्रतिमाओंको निकटके कुओं और महानदी यमुनामें फेंक दिया। महत्त्वपूर्ण

बात तो यह है कि यहाँ कुषाण और गुप्तकालमें जो अनेक विशाल स्तूप, विहार, मन्दिर तथा भवन विद्यमान थे, उनमेंसे अब एक भी विद्यमान नहीं है।

मथुराकी कलाकृतिके प्रथम दर्शन और पहचान सन् १८३६ में हुई, वह था आसव-पानका दृश्य, जो आजकल कलकत्तेके संग्रहालयमें रखा हुआ है। इसके बाद सन् १८५३ में जनरल कनिंघमने कटरा केशवदेवसे कई मूर्तियाँ और शिलालेख प्राप्त किये। इसके बाद १८६२ में फिर इसी स्थानसे गुप्त संवत् २३० (सन् ५४९-५०) में बनी तथा यशा विहारमें स्थापित सुन्दर बुद्धमूर्ति खोज निकाली, जो इस समय लखनऊ-संग्रहालयकी शोभा बढ़ा रही है। कलेक्टरकी कचहरीके निकट जमालपुर-टीला समतल किया जा रहा था, तब वहाँ दधिकर्णनागका मन्दिर, हुविष्कका विहार, अनेक शिलापट्ट, स्तम्भ, वेदिकास्तम्भ तथा स्तम्भाधारके रूपमें मथुरा-कला-भण्डार प्राप्त हो गया। इसी स्थानसे संग्रहालयमें प्रदर्शित सर्वोत्कृष्ट गुप्तकालीन बुद्धमूर्ति मिली।

इसके बाद १८७१ में फिर कनिंघमने कंकाली और चौबारा-टीलेकी खुदाई करायी। इस समय मथुराने मानो कलाका अपना भण्डार खोल दिया। यहाँकी खुदाईसे उन्हें, कनिष्कके राज्य संवत् ५ से वासुदेवके राज्य संवत् १८ तककी प्रतिमाएँ मिलीं।

सन् १८७२ में ग्राउस महोदयको पालीखेड़ा नामक स्थानसे आसवपायी कुबेरकी मूर्ति मिली। १८८८ से १८९१ तक डाक्टर फ्यूहहरने कंकाली-टीलेकी खुदाई करायी जिसमें ७३७ से अधिक मूर्तियाँ मिलीं, जिसे लखनऊ-संग्रहालयमें भेज दिया गया। सन् १८९६ के बाद मथुराकी मूर्तियोंके संग्रहकी ओर कोई प्रयास नहीं किया गया। सन् १९०९ में मथुरा और उसके आस-पासके गाँवोंमें बिखरी मूर्तियाँ एकत्र की गयीं, जिसमें यमुनानदीका योग-दान महत्त्वपूर्ण है।

मथुराका यह विशाल कलासंग्रह तत्कालीन जिलाधिकारी श्री ग्राउस द्वारा सन् १८७४ में तहसीलके निकट खाली पड़े एक छोटे-से भवनमें आजसे सौ साल पूर्व रखा गया। किन्तु कुछ कठिनाइयोंके कारण उस समय इसे जनताके लिए खोला गया। सन् १९०५ में इस संग्रहालयका भार डॉक्टर जे० पी० एच० फोगलने सम्भाला। उन्होंने बड़ी लगनसे मूर्तियोंका वर्गीकरण कर सन् १९१० में संग्रहालयकी कलाकृतियोंका पहला सचित्र कैटलाग (सूची) प्रकाशित किया। इसके फलस्वरूप शासनकी दृष्टिमें इसका महत्त्व बहुत बढ़ गया और इसका सारा प्रबन्ध राज्य-सरकारने अपने हाथमें ले लिया।

सीमित स्थानोंमें संगृहीत वस्तुओंको ठीकसे प्रदर्शित न कराये जानेके कारण सन् १९२६ में डेम्पियर-पार्कके विशाल मैदानमें वर्तमान भवनका निर्माण प्रारम्भ हो गया। मूल संकल्पमें इसे अष्टकोण बनानेकी योजना थी, किन्तु प्रथम अवस्थामें वह वैसा न बनाया जा सका और संयुक्तप्रान्तके गवर्नर सर विलियम मालकम हेली द्वारा सन् १९३३ में इसका उद्घाटन कराया गया। उन दिनों भारतके वाइसराय लार्ड कर्जन भारतीय पुरातत्त्वके जनक समझे जाते थे। उन्हींके प्रयाससे अनेक स्थानोंपर पुरातात्त्विक वस्तुओंके संग्रहालय

स्थापित किये गये। अतएव उन्हींके सम्मानमें इसे 'कर्जन म्यूजियम ऑफ ऑर्कियालाजी' कहा जाता था। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद इसे 'पुरातात्त्विक संग्रहालय, मथुरा' कहा जाने लगा। अब इसे 'राजकीय संग्रहालय, मथुरा' कहा जाता है।

स्वतन्त्रताके बाद इस म्यूजियममें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सर्वप्रथम मूलयोजनाके अनुसार इसे अष्टकोण बनाया गया, ताकि नवीन सामग्रीको रखनेके लिए पर्याप्त स्थान मिल सके। इस दृष्टिसे भवन दुमंजिला बनाया गया। कर्मचारियोंकी संख्यामें वृद्धि हुई। संग्रहालयके प्रकाशन बढ़े। दर्शक, शोधच्छात्र, विदेशी सैलानी तथा भारतीय कलापर कार्य करनेवाले देश-विदेशके विद्वानोंके लिए यहाँकी दर्शनोय मूर्तियोंके चित्र और प्रतिकृतियाँ उपलब्ध करायी जाने लगीं। प्रदर्शनमें आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणोंका प्रयोग किया गया। संक्षेपमें भारतीय कलाके इस अमूल्य भण्डारको समुचित रूपसे जनताके सामने रखा गया। इसका फल यह हुआ कि 'मथुरा-संग्रहालय' का नाम देश-विदेशमें फैल गया। इसका श्रेय निम्नांकित विद्वानों-को है, जिनके अथक प्रयासके कारण संग्रहालय, मथुराको यह सम्मान प्राप्त हुआ है :

रायबहादुर पं० राधाकृष्णजी : आप इस संग्रहालयके १९१२ से १९२८ तक अवैतनिक अध्यक्ष थे। आपने बड़े परिश्रमसे और सजग रहकर संग्रहालयकी मूर्तिसंख्यामें वृद्धि की। श्री दिलस्कर : पं० राधाकृष्णजीके एक वर्ष बाद आप इसके अध्यक्ष हुए। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : आप श्री दिलस्करके बाद सन् १९३१ से १९३९ तक इसके अध्यक्ष हुए। आपने अपने समयमें मथुराकी प्रचुर सामग्री प्रकाशमें लायी। सर्वप्रथम आपने 'फागले कैटलाग' को संशोधित कर उसे अपने समय तककी सामग्रीसे पूर्ण कर दिया। श्री मदनमोहन नागर : डॉ० अग्रवालके बाद आपने इसका भार सम्भाला और सन् १९४६ तक उसे सम्भाले रहे। प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी : नागरजीके बाद आपने इसका भार संभाला। आपने भी इस संग्रहालयके लिए बहुत कार्य किया। आपके बाद कई लोग आये।

डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी : सन् १९६३ में डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशीको शासनने संग्रहालयके अध्यक्षके पदपर आमन्त्रित किया। सर्वप्रथम वाराणसेय संस्कृत विश्व-विद्यालयके संग्रहालयको प्रकाशमें लानेका श्रेय आपको ही है। मथुरा आनेके बाद डॉक्टर जोशीने यहाँकी कलाकृतियोंपर अनेक शोध-लेख तथा 'मथुराकी मूर्तिकला' ग्रन्थ लिखा।

मथुराका यह संग्रहालय अपनी विशेषताओंके कारण सर्वत्र प्रसिद्ध है। यहाँ वेम, कनिष्क, चाष्टन आदि कुषाण राजपुरुषोंकी मूर्तियाँ, परमरब, नगला, घरोद आदि स्थानोंसे प्राप्त यक्ष-यक्षिणियोंकी विशाल प्रतिमाएँ, मनोवेधक भाव-भंगिमाओंमें खड़ी शालभञ्जिकाएँ, अनेक देवी-देवताओंका समूह, गुप्तकालीन बुद्धकी अमर कलाकृतियाँ हैं।

पाषाण-कृतियोंके अतिरिक्त यहाँकी मृण्मूर्ति-कला भी देखनेवालोंका हृदय बलात् अपनी ओर खींच लेती है। एक स्वतन्त्र कक्षमें अतिप्राचीन कालसे छठी शताब्दी तककी अनेक मिट्टीकी मूर्तियाँ, मातृदेवियोंके अनेक प्रकार, कार्तिकेय, गजलक्ष्मी, वसुधारा, गङ्गा, विष्णु, बलराम आदि उपासना-प्रतीकोंके विकासका जीता-जागता चित्र उपस्थित करती है।

(शेष पृष्ठ ५४ पर)

लोक-साहित्यमें कृष्णलीला

कुमारी शोभा चांडक

★

कन्हैयाकी मनमोहक बाल-लीलाओंसे भक्ति-साहित्य भरा पड़ा है, किन्तु उससे भी प्राचीन हमारे लोक-साहित्यमें सरलतम भाषामें पुरातन भारतीय संस्कृति और समाजका साहित्यिक सौंदर्य और शब्द-जालसे दूर मौलिक वर्णन अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। रामकृष्णके लीला-वर्णनमें लोक-साहित्य अग्रणी रहा है। कन्हैयाके प्रति गोपियोंके उलाहने यशोदाको नित्य ही सुननेको मिलते थे। महाकवि सूरके शब्दोंमें यशोदा द्वारा इन उलाहनोंको सुनना और फिर अपने लाड़लेको छोटा और नादान कहकर निर्दोष निरूपित करना कितना मर्मस्पर्शी है :

[राग : काफी]

बरजो जसुदा जी कान्हा ॥ टेक ॥

में जमुना जल भरन जात ही मारग निकस्यो आना।
बरजत ही मेरी गागर फोरि ले अबीर मुख साना॥
सखी सब देत है ताना ॥ १ ॥

मेरो लाल पलनामें झूले बालक है नादाना।
ये क्या जाने रस की बतियाँ क्या जाने खेल जहाना॥
कहाँ तुम भूली ज्ञाना ॥ २ ॥

तुम सांची तुमरो सुत सांचो हम ही करत बहाना।
सूरदास ब्रजवासिन त्यागे ब्रज से अनत न जाना॥
करो अपना मनमाना ॥ ३ ॥

कृष्णके उपद्रव करनेका क्रम शिकवा-शिकायतके बाद भी बंद नहीं होता, उन्हें तो कभी वंशी बजाकर गोपियोंको इकट्ठा करना है, कभी दही-दूध चुराना है, कभी गागर फोड़ना है तो कभी गोपियोंके कपड़े चुराकर उन्हें लज्जित करना है। इस प्रकार गोपियाँ यशोदाको नित्य जितने भी उलाहने दें, कम ही थे। कभी-कभी तो वे कृष्णके पीछे मथुरा छोड़नेकी धमकी भी मैय्याको दे देती थीं :

जशोदा तेरो लाल री वंशीमें देवे गारी ॥ जशोदा ॥ (टेक)
जब हम जाते नीर भरनको रोके गेल हमारी।
जब हम जावें दहि बेचनको मांगे दान मुरारी॥
जब हम जावें जमुना जल भरने फोरे गगर हमारी।
जब हम जावें जमुना जल सपरन झपट चुरावे सारी॥
वाके गुण में कहा सुनाऊँ लाज लगत है भारी।
या तुम बरजों कान्हा नहिं हम तजहै पुरी तिहारी॥

जहाँ एक ओर कन्हैया उलाहनेके शिकार हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी प्रशंसा भी यशोदाकी नजरोंमें कम नहीं। उनका लाड़ला गाय चराता है, गायें दुहता है और नाना प्रकारके विचित्र कामकर यशोदा और ग्वाल-बालोंको चकित कर देता है। कृष्णकी दुहनी लीला-गारी सुनते ही बनती है :

दो मईया मोहे स्वर्ण दुहनिया दुहलाऊँ में गईया ॥ मोरे लाल ॥ (टेक)
बाबाने मोहे दुहनो सिखायो दुह बतलाई अंगुरिया।
जब लो दुह-दुह गईया लाऊँ तुम मथ डारो दहिया ॥
गईया दुह-दुह मटुकी भर रहो सांची सीखो कन्हैय्या।
बछरा ढील दुहत जहाँ गईया दिखत कुँवरकी मैया ॥
साल आठ बड़ों चतुर भयों हैं वाको जशोदाको छैया।
गउएँ चरावे गउएँ लगावें मिलेगी नवल दुलहईया ॥

नटखट कृष्णकी चीरहरण-लीला सर्वविदित है। गोपांगनाओंके वस्त्र चुराकर उन्हें निर्लज्ज कर देना किसी सहज व्यक्तिके बसकी बात नहीं। फिर भी प्रेमासक्त गोपियोंका कृष्णके प्रति प्रेम-प्रदर्शन उल्लेखनीय है। नटखट कन्हैया चीर चुराकर कदमपर बैठ जाते हैं, वस्त्रहीन गोपियोंकी लज्जायुक्त वाणी भावविमोर कर देती है। उसे सुनकर किसे रोमांच नहीं होगा ? :

भोर भये रवि किरन उजेरत कमल-कली सकुचाई वे।
हाँ हाँ वे हुम्मा वे। (टेक)
चुन चुन फूल भरी सब झोरी जमुना हिल-मिल धाई वे। ······
चीर उतार धरे धरनीमें अंग अनंग नहाई वे। ······
ले हरि चीर कदम पै बैठे सखियाँ सब अकुलाई वे। ······
चोली चीर हमें दो मोहन काहे लाज गमाई वे। ······
लो पट भूषण बाहर निकसो युवती श्याम बुलाई वे। ······
चलत ब्यार अंकन कापत हैं सुन लो विनय कनाई वे। ······
चतुर सखी सब निकसी जलसे छतियन हाथ लगाई वे। ······
दे दो अंबर मोरे मनमोहन हम सब बाहर आई वे। ······
लाज ओर हरी तुम्हें दई सब तुमरी नारी कहाई वे। ······
धन्य भाग उन सब कलियन के भौंरा बने यदुराई वे। ······
व्रज-बनिता सब पुष्प हैं मधुकर गोकुलचद।

वास्तवमें धन्य हैं वे प्रेमी गोपियाँ, जिन्हें अनासक्त योगी कृष्णका वासनारहित विशुद्ध प्रेम प्राप्त हुआ। कृष्णके विरहमें यदि गोपियाँ उद्धवके उपदेशको भी ठुकरा दें तो क्या आश्चर्य ? वे तो प्रेमकी परिपक्वताको प्राप्त कर चुकी थीं। भले ही कृष्ण शारीरिक रूपसे उनके निकट न हों, किन्तु मानसिक निकटता शारीरिकसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। धन्य हैं कृष्ण और गोपियोंकी प्रेम-लीला !

ऐतिहासिक कथा

धनका सदुपयोग

श्री कृष्णगोपाल माथुर

☆

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभ
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुं करे कङ्कणम् ।

"सज्जनोत्तम महाशय, सुना आपने ? भगवान्‌का ध्यान किया जा रहा है और सुनिये :

नीलाचलनिवासाय नित्याय परमात्मने ।
बलभद्र-सुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः ॥

जगदाधार भगवान् श्री जगन्नाथस्वामीको यह नमस्कार हो रहा है। ऐसे समय आपके आगमनकी सूचना सेठजीको कैसे दूँ ? मुझे आदेश है कि चाहे धन्धेमें हानि होने-जैसा अत्यावश्यक कार्य हो, तो भी भगवत्-पूजापाठके समय उन्हें न छेड़ा जाय। पूरे सतारा जिलेमें रामधनजी सेठ भगवद्भक्ति, ईमानदारी, साधु-सेवा, दान एवं परदुःखकातरतामें सुप्रसिद्ध हैं।'—अत्यन्त विनीतभावसे द्वारपाल रामलालने विवशता प्रकट की।

आगन्तुक जैसे परिचित हो, वैसी हँसी हँसता हुआ कुछ आवेशकी मुद्रामें बोला : "तुम चाहो तो सूचना कर सकते हो, पर शायद कुछ भेंट-पूजा चाह रहे हो ?"

"राम-राम ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मैं सरकारी कचहरियोंके उन चपरासियों जैसा नहीं, जो दो-चार आनेके लिए हाथ पसारते हैं। मै अपने स्वामी सेठजीका विश्वास-पात्र पुराना सच्चा सेवक हूँ। हीरे-मोतियोंका व्यापार इनके यहाँ होता है। लाखोंकी सम्पत्ति मेरे भरोसे छोड़कर निश्चिन्त हो विदेश चले जाते हैं। भगवान्‌ने आजतक मेरी ईमानदारीमें अन्तर नहीं आने दिया, यह मैं अभिमानसे नहीं, वस्तुस्थिति कह रहा हूँ।"

रामलालकी बात सुनकर आगन्तुक उठकर चला गया। थोड़ी देर बाद फिर वह आया। इस समय रामलालने उसे सेठजीके बैठक-कक्षमें बड़े प्रेमसे बैठाते हुए कहा : "अब तो पूजा-गृहके कपाट खुलनेमें थोड़ा ही विलम्ब है।"

बैठकका दृश्य देखकर आगन्तुक बड़ा ही प्रसन्न ही हुआ। तुलसीके स्वर्णनिर्मित गमलेपर लिखा था : नमस्तुलसि कल्याणि नमो विष्णुप्रिये शुभे। भीतोंपर कलात्मक शैलीमें लिखा था : श्रीकृष्णः शरणम् मम, ॐ रामाय नमः, नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने। सदा रामः कृपारामो महारामो धनुर्धरः। कृष्णो नारायणो धीरो राधापतिरुदारधीः। सर्वमङ्गलदाता च सर्वकामप्रदायकः। आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।

सच्चिदानन्दरूपाय भक्तानुग्रहकारिणे।
मायानिर्मितविश्वाय महेशाय नमो नमः॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

ऐसे अनेक भगवन्महिमासूचक श्लोक चित्रित थे, जिनके देखने-पढ़ने; स्मरण करने, हृदयमें स्थान देने, प्रत्येक श्वासके साथ उनका स्मरण करनेसे दुस्तर भवबाधा दूर होकर सहज ही असंख्य दुःखोंका नाश हो जाता है, जैसे अग्निकी छोटी-सी चिनगारी रुईके बड़े ढेरको देखते देखते भस्म कर देती है।

"अधिकांश धनवालोंके एकान्त बैठक-कक्षमें अश्लीलवाक्योंकी भरमार रहती है, जिनके देखने-पढ़नेसे उनका, उनके परिवारका, उनकी भावी पीढ़ीका तथा अन्य देखनेवालोंका चरित्र भ्रष्ट हुए बिना नहीं रहता। किन्तु धन्य है करोड़पति सेठ रामधनीजीको, जिन्होंने ऐसे पवित्र आदर्श सर्वहितार्थ सुलभ कर रखे हैं।"

—आगन्तुकके चित्तमें यह चिन्तन चल ही रहा था, इतनेमें सेठ रामधनीजी नित्यनेम सम्पन्न करके बैठक-कक्षमें आये। आपसी कुशल-प्रश्नादिके पश्चात् आगन्तुकने अपना परिचय देते हुए कहा :

"महानुभाव, शायद मुझे आपने पहचाना नहीं। बचपनमें मुझे आपने आश्रय देकर अपने यहाँ रख लिया था। एक दिन मैं आपकी रसोईके लिए जलका घड़ा कंधेपर रखे आ रहा था, उस समय आप मोती खरीद रहे थे। मैं उसी दशामें खड़ा रहकर मोतियोंकी चमक-दमक देखने लगा। जब मैंने मोती लेनेकी इच्छा प्रकट की तो आपने हँसकर कहा : 'ये मोती तो बड़े-बड़े पंडित, राजा, सम्राट् ही पहन सकते हैं।' यह सुनकर मैंने लज्जित होते हुए, पण्डित बननेका मनमें दृढ़ निश्चय कर लिया। मेरी प्रार्थनापर आपने अपने व्ययसे मुझे काशीमें पढ़नेके हेतु भेज दिया।

"उस समय वहाँ जयपुर महाराज सवाई जयसिंहजीकी आर्थिक-सहायतासे श्रीवल्लभ भट्ट पाठशाला चलाते थे। उनके प्रश्नके उत्तरमें जब मैंने अपनी निरक्षता प्रकट की तो उन्होंने मुझे दुत्कारकर निकाल दिया। मुझे बड़ी लज्जा आयी। मैंने विद्यादात्री भगवती शारदाकी शरण ली और इस स्तोत्रका नित्य भक्तिभाव एवम् श्रद्धाके साथ पाठ करने लगा :

वीणाधरे विपुलमङ्गलदानशीले भक्तार्तिनाशिनि विरञ्चि-हरीशवन्द्ये ।
कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ।।

"थोड़े ही दिनोंमें माँ शारदाकी दयासे यह हुआ कि भट्टजी अपने निरक्षक जँवाईके साथ मुझे भी पढ़ाने लगे । रात-दिन परिश्रम करनेसे मुझे सब शास्त्रोंका ज्ञान हो गया । अगाध पाण्डित्य धारण प्राप्तकर आपका ऋण चुकाने, कृतज्ञता प्रकट करने और आप जैसे धर्मात्मा, दीनप्रतिपालक सेठके दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ । अब मुझे रामशास्त्री कहते हैं ।"

सेठजीको अपनी प्रशंसा सुनना पसन्द नहीं था । वे तो श्रीभगवान्‌को मन-ही-मन कोटिशः धन्यवाद दे रहे थे कि उन्होंने मेरी आर्थिक सहायतासे एक दीन-हीन बालकको विद्या-बुद्धिज्ञानमें पारंगत करवाकर उसका जीवन सुधार दिया । धन्य प्रभो !

प्रकटमें सेठजी बोले : "प्रिय शास्त्रीजी ! आज आपको देखकर मेरे हर्षका पार नहीं रहा । प्रभुकृपाका पार नहीं है । ऋण चुकानेकी बात आप मेरे सामने कदापि न करें, भूल जायें उसे । श्री जगदीश्वरकी प्रेरणासे मेरे धनका सदुपयोग ही हुआ है । अब आगे मैं आपको जो चाहें, हर प्रकारकी सहायता देनेके लिए तन-मन-धनसे सहर्ष तैयार हूँ ।"

रामशास्त्रीने सेठजीकी इस कृपाका बहुत-बहुत अहसान माना । शास्त्रीकी प्रसिद्धि दूर-तक फैल गयी थी । उस समय मराठोंका उदयकाल था । बालाजी बाजीराव पेशवाने राम-शास्त्रीको बड़े सम्मानके साथ बुलाया और सभा पंडित एवं धर्माधिकारीकी पदवीसे विभूषित किया तथा अपने राज्यकी हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीशको बना दिया ।

रामशास्त्रीकी निर्भयता, न्यायप्रियता, सरलता और और कर्तव्यशीलता, अटलता एवं निःस्पृहताकी स्मृतियाँ आज भी भारतवर्षमें ताजी बनी हुई हैं ।

(पृष्ठ ४९ का शेषांश)

इसके अतिरिक्त मथुराके पास 'सोंख' नामक स्थानपर जर्मन विद्वान् डॉक्टर हर्टल द्वारा किये गये उत्खननसे जो बहुमूल्य सामग्री प्राप्त है, वह सब यहाँ सुचारुरूपसे प्रदर्शित है । प्राप्त सामग्रीको देखनेसे ज्ञात होता है कि कभी सोंख नामक स्थान नागपूजाका स्थान था । निकटभविष्यमें यहाँसे प्राप्त वस्तुएँ इस संग्रहालयकी शोभा बढ़ायेंगी । मथुराके इस संग्रहालयका इस वर्ष १९७४ में शताब्दि-महोत्सव शासनकी ओरसे मनाया जा रहा है । ●

●

निरंकुश तृप्ति : एक दार्शनिक विश्लेषण

श्री 'ब्रह्मनिष्ठ'

★

जीवके अज्ञानकी तीन अवस्थाएँ तथा ज्ञानकी चार अवस्थाएँ पंचदशीकारने, तृप्ति-दीप प्रकरणमें बतायी हैं। अज्ञानकी अवस्थाएँ : (१) अज्ञान, (२) आवरण और (३) विक्षेप हैं तो ज्ञानकी अवस्थाएँ हैं : (१) परोक्ष ज्ञान, (२) अपरोक्ष ज्ञान, (३) शोकनिवृत्ति और (४) निरंकुश तृप्ति। अज्ञानकी तीन अवस्थाएँ ही जीवकी बंधनरूप हैं, जब कि ज्ञानकी चार अवस्थाएँ मोक्षरूप हैं।

इन अवस्थाओंको समझानेके लिए पंचदशीकारने एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। दस पुरुष किसी नदीको पार करनेके बाद जब उस पार पहुँचे तब उनके प्रमुखने गिनती की कि सब दस पुरुष आ गये हैं या नहीं ? प्रमुखने जब गिनती की तो अपनेको छोड़कर कहा : "केवल नौ पुरुष ही पार पहुँचे हैं, एक पुरुष खो गया।" सभी पुरुष उस दसवें पुरुषके लिए शोक करने लगे। उसी समय एक बुद्धिमान् पुरुष आ गया और उसने शोकका कारण पूछा, तो प्रमुखने कहा : "हममेंसे एक पुरुष नदीमें डूब गया है, हम दसमेंसे नौ रह गये हैं, दशम पुरुष नहीं है।" उस बुद्धिमान् पुरुषने अपने मनमें गणना की और दसों पुरुषोंको वहाँ विद्यमान पाकर कहा : "दशम पुरुष मरा नहीं है।" और प्रमुखसे फिर गणना कराकर कहा : "तू ही दसवाँ पुरुष है।" यह ज्ञान होनेपर सब पुरुष हर्षित हो उठे, और शोकसे निवृत्त हो गये।

इस उदाहरणसे यह प्रकट होता है कि जीव अज्ञान, आवरण तथा विक्षेप-अवस्थाओंमें शोकग्रस्त और दुःखी रहता है तथा जब उसे सुनकर ज्ञान होता है कि उसमें चेतन आत्मा उसका अधिष्ठान है, तो उसे अपना परोक्ष ज्ञान होता है। जब उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वह स्वयं ही सच्चिदानन्द चेतन आत्मा है तब उसे अपना अपरोक्ष बोध हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे बुद्धिमान् पुरुषने गणना करके दशम पुरुषका प्रत्यक्ष करा दिया। अपरोक्ष ज्ञानके बाद जीवको निरंकुश तृप्ति प्राप्त होती है, जो अमर्यादित है। तब समस्त शोकोंसे निवृत्ति हो जाती है, यही जीवकी मोक्ष-अनुभूति है।

तृप्ति विषयभोगसे भी होती है, लेकिन वह अल्पकाल तकके लिए ही होती है। इस तृप्तिसे पहले विषयभोगकी इच्छारूप अतृप्ति होती है और भोगके पश्चात् भी फिर अतृप्ति हो जाती है, जैसे कि तृप्तिपर कोई अंकुश लगा हो और वह किसी मर्यादासे बँधी हो। लेकिन स्वरूपके ज्ञानसे जो तृप्ति होती है, उसपर किसीका अंकुश नहीं होता। वह न किसीके आश्रित होती हैं और न किसी मर्यादासे बँधी। इसीलिए स्वरूपके ज्ञानसे तृप्तिको निरंकुश तथा अमर्यादित कहा गया है।

ऊपर जो जीवके अज्ञानकी तीन अवस्थाएँ बतायी गयी हैं, उनमें अज्ञान या माया-शक्तिका फैलाव समस्त प्राणियोंपर होता है जो अनादिकालसे चला आ रहा है। इसका कारण

जीवोंके कर्मानुसार सुख दु:खरूपी भोग हैं। जीवका आवरण अपने स्वरूपको न जानना है। अज्ञानशक्ति जीवके नित्य स्वरूपको ढँक देती है। इसीको 'आवरण' कहते हैं। 'विक्षेप' अन्यथा प्रतीतिको कहते हैं। जीव अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको नहीं जानता और अपनेको देहादिरूपसे ग्रहण करता है, यह विक्षेपरूप अन्यथाप्रतीति है। ये आवरण दो प्रकारके हैं : १. असत्त्वापादक और २. अभानापादक। परोक्षज्ञान असत्त्वापादक आवरण, जो जीवमें 'कूटस्थ चेतन नहीं है' इस भ्रान्तिरूप है, दूर करता है और अपरोक्षज्ञानसे जीवके अपने कूटस्थ चेतनका बोध कराकर अभानापादक आवरण नष्ट हो जाता है। अभानावरणके हट जानेपर जीवके बन्धनरूप जीव-स्वरूपका आरोप भी नहीं रहता। इस आवरणके निवृत्त होनेपर जीवभावके कारण बना कर्ता-भोक्तारूप संसार तथा उसके समस्त शोक-मोह नष्ट हो जाते हैं। समस्त संसारके निवृत्त हो जानेपर आत्माके नित्यमुक्त होनेका ज्ञान होने लगता है; अतएव पुन: शोक उत्पन्न नहीं होता और निर्मर्याद तृप्तिकी उपलब्धि होती है।

जीवको यह भ्रान्ति रहती है कि वह देहमें बन्दी है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर किसी न-किसी समय उसको अपने घेरेमें डाले रहते हैं। वह तीनों शरीरोंके ज्वर-तापसे सदैव अपनेको ग्रसित अनुभव करता है। स्थूलशरीरका ज्वरताप नाना भौतिक-शारीरिक पीड़ाएँ हैं। सूक्ष्मशरीरके ज्वरताप काम, क्रोध, मद, लोभ आदि हैं तो कारणी-शरीरका अभावरूपी ज्वरताप है। बेचारा जीव जब स्थूलशरीरके तापसे छुटकारा पाता है तो सूक्ष्मशरीरके ताप उसे घेरे रहते हैं। जब सूक्ष्मशरीरके तापोंसे छूटता है, तो कारण-शरीरके ज्वरतापसे घिर जाता है। निष्कर्ष यह कि जीव इन तीनों शरीरोंमें तड़फड़ाता रहता है और इसके बाहर निकल नहीं पाता। इसका कारण अज्ञान, आवरण और विक्षेप ही हैं। जब कोई ब्रह्मनिष्ठ सन्त जीवको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दे बताता है कि वह इन शरीरोंसे असंग है, उसका वास्तविक स्वरूप सत् चित्-आनन्दस्वरूप है—जैसे घटाकाश घटमें बन्दी नहीं, घटसे असंग और सर्वत्र व्यापक है उसी प्रकार जीवका चेतन आत्मा असंग है और देहादिमें बन्दी नहीं है—तो ऐसे परोक्षज्ञानसे जीवको अपनी असंगताकी प्रतीति होने लगती है। जब सन्त 'नेति नेति' युक्तिसे उसके देहादिक और पंचकोषोंकी निवृत्तिकर उसको निर्विशेष अविनाशी सत्ताका प्रत्यक्षीकरण करा देता है, तब उसे अपने वास्तविक सत्, चित्, आनन्दस्वरूपका बोध हो जाता है। वह अपनेको 'मैं चिदात्मा हूँ, मैं अमर हूँ, मैं असंग हूँ' ऐसी घोषणा करने लगता है। यही उसका अपरोक्ष ज्ञान है और यही है, निरंकुश तृप्तिका ग्रहण।

विवेकसे यह नित्य अनुभवमें आता है कि जीव स्वप्नावस्थामें जागृत-अवस्थाके अन्नमय-कोषसे छुटकारा पा जाता है। जाग्रत्-अवस्थाके भोग्य पदार्थों तथा उनके भोक्तापन-को भी वहीं छोड़ देता है। स्वप्न-अवस्थामें उसे जाग्रत्कालके भोग्य पदार्थोंके सुख-दु:ख कुछ भी नहीं लगते। यदि जाग्रत्कालमें पीड़ित होता है अथवा कोई विषयसुख लेता रहता है तो वे सब जाग्रत् अवस्थामें ही रह जाते हैं, उसके साथ स्वप्नमें नहीं जाते। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि न केवल भोग्य पदार्थ छूट जाते हैं, अपितु भोग्य पदार्थोंका भोक्तापन भी छूट जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जाग्रत्-अवस्थाका कर्ता-भोक्तापन

वास्तविक उसका नहीं है। जो जिसका होता है, वह सदैव उसके साथ रहता है, यथार्थ सम्बन्ध कभी नहीं टूटते, काल्पनिक सम्बन्ध ही टूट जाते हैं। जब जाग्रदवस्थाका भोग्य तथा भोक्तापन जीवसे स्वप्न-अवस्थामें छूट जाते हैं तो वह वास्तविक नहीं, केवल काल्पनिक हैं। इसी प्रकार जीवके स्वप्न-जगत्के भोग्य पदार्थ और स्वप्न-जगत्का कर्ता-भोक्तापन स्वप्नकाल-तक ही सीमित रहता है। जीवका इन दोनोंसे कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं, केवल काल्पनिक सम्बन्ध ही होता है। इसी प्रकार सुषुप्तिकालमें जीवकी जो अभावरूपी शून्यता तथा उस शून्यताका भोक्तापन ये दोनों भी सुषुप्तिकालतक ही सीमित रहते हैं। इसीलिए ये भी काल्प-निक ही हैं। जीव तो वास्तवमें केवल साक्षीका काम करता है। तीनों अवस्थाओंके भिन्न-भिन्न दृश्यरूपी प्रपंचोंको और उनके भोक्ताओंको केवल देखता ही है, उनका साक्षी ही है। जबतक यह भ्रान्तिसे इन अवस्थाओं तथा शरीरोंके भोग्य तथा भोक्ताओंसे अपना एकत्व होनेका अभिमान करता है तभीतक कल्पितरूपमें बन्दी रहता है। जब विवेक और विचारसे भ्रान्तिका त्यागकर अपने असंग, नित्य, अविनाशी स्वरूपमें अवस्थित होता है तब मुक्त होनेका आनन्द लेने लगता है। वह मुक्त तो सदा रहता ही है, भ्रान्तिसे अपनेको बन्दी मान बैठता है। मुक्त होनेका ज्ञान ही निरंकुश तृप्ति है।

जीव भावरूप है, उसका अधिष्ठान कूटस्थ-चेतन आत्मा है। यह चिदाभास है अर्थात् चित्का आभास है। यह अपनेको ज्ञान और विचारके द्वारा आभासरूप जानकर कूटस्थसे एकताको प्राप्त होता है। शरीरोंको भिन्न जानकर उनके एकत्व तथा अभिमानको त्याग देता है। सदा साक्षीका विचार कर तीनों शरीरोंके ज्वरोंसे दुःखी नहीं होता।

जीवरूपी चिदाभासमें कोई ज्वर नहीं होता; क्योंकि चित् तो एकमात्र प्रकाशस्वभाव है। अज्ञानसे जब वह शरीरोंका अभिमान करता है तब उनके ज्वरोंसे पीड़ित होता है। यही बन्धन है। जब वह शरीरोंसे तादात्म्य तोड़ देता है तब मुक्त होनेका अनुभव करता है।

यह जीव ही अभिमानी बनकर विकारी है। अभिमानका त्याग करके अधिकारी हो जाता है। वास्तवमें अभिमानका ग्रहण तथा त्याग दोनोंसे शून्य होकर अपने सहजस्वरूप आत्मामें प्रतिष्ठित हो जाता है।

जीव बुद्धिके अधीन विकारी होता है, लेकिन उसकी सत्ता अधिष्ठान आत्माके बिना नहीं रह सकती। जब ज्ञानसे अपने अधिष्ठानको जानकर बुद्धिकी अधीनता त्याग देता है तब वह कर्ता-भोक्ताकी सीमासे पृथक् हो जाता है। 'गुण गुणोंमें वर्तते हैं' गीताके इस सिद्धान्तको जानकर अकर्ता, अभोक्ता अनुभव करने लगता है यही जीवकी परम, निरंकुश तृप्ति है।

विषयोंसे मिलनेवाली तृप्ति, विषयोंकी कामनासे कुंठित होनेके कारण परिमित तथा अल्पतृप्ति है। अपरोक्षज्ञान-जन्य तृप्ति तो अपरिमित तथा नित्य है; क्योंकि 'जो कुछ करना था कर लिया, जो कुछ पाना था पा लिया, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे कुछ नहीं करना है' ऐसा निश्चय कर जीव कृतकृत्यताका अनुभव करता है। यही निरंकुश तृप्ति है।

●

चौधरी हरिहरसिंहकी चिट्ठी

डेनमार्क और वहाँकी गायें

★

गुरुदेव !

आपके यहाँसे चलकर मैं ज्योंही अपने अड्डेपर पहुँचा, त्योंही साथियोंने 'दिल्ली चलो'की वह चिल्ल-पों मचायी कि सारा पास-पड़ोस जाग उठा। ऐसा जान पड़ा मानो सुभाषबाबूकी सेना इम्फालसे कूच करने लगी हो। घड़ीभरतक वह धमा-चौकड़ी मची कि पास-पड़ोसके लोग लाठियाँ ले-लेकर बाहर निकल पड़े कि कहीं कलवरियासे छुटे हुए पियक्कड़ तो नहीं आ भिड़े ? पर हम लोगोंके सिरपर गाँधीटोपी देखते ही वे पूँछ दबाकर भीगी बिल्ली बने दायें-बायें खिसक गये और समझ गये कि इन लोगोंसे उलझना ठीक नहीं है। आजकल इन्हींकी तूती बोलती है। घण्टेभरमें हम लोग गाड़ीमें जा बिराजे और सोमवारका दिन निकलते-निकलते अपनी राजधानी दिल्लीमें जा धमके।

वहाँ पहुँचनेपर ज्योंही कानमें भनक पड़ी कि डेनमार्क उड़कर जाना होगा तो मेरे होश उड़ गये। मेरे साथियोंके मुँहपर भी हवाइयाँ उड़ने लगीं। सब लोग पहली-पहली बार उड़नखटोलेपर चढ़ रहे थे। डरके मारे सबके प्रान सूखे जा रहे थे। हम लोग धरतीके दुपाये भला सुन्न महलमें कैसे पंख मार पायेंगे ? पर चारा ही क्या था! हम सब लोग उड़नखटोलेके दबड़ेमें परकटे कबूतर बनकर गुटरगूँ करते हुए जा घुसे। पहले तो वहाँ बड़ा अच्छा लगा, पर जब जह उड़नखटोला घर्रऽऽऽऽऽर्र करके गरजता धरती छोड़कर ऊपर उड़ चला तब तो यहाँ भी पैरों तलेसे धरती खिसक गयी। हाय राम ! अब क्या होगा ? रहा सहा धीरज भी बिना लौंगका कपूर हो गया। जी धुक-धुक करने लगा और ऐसा जान पड़ने लगा कि पसलियोंके पिंजरेमें धुक-धुक करनेवाला इंजन बस दो-चार बार झक-झुक करके फिस्स बोला चाहता है। पर फिर पवनसुत हनुमान्‌जीका सुमिरन किया और जी कड़ा करके आँख मूँदकर चुप बैठ गया। बम्बई, कराची, केयरो, जिनेवा और पेरिस कब आये और कब निकल गये, इसको अपनेरामको कुछ सुध नहीं है। राम-राम करते जब तीसरे दिन लंदन दिखायी दिया तब कहीं जानमें जान आयी। उस उड़नखटोलेसे बाहर पैर धरते ही जी हल्का-सा हो गया और वही हुलास हुआ जो पिंजड़ेसे उड़ निकलनेपर पहाड़ी सुग्गेको होता है। जान बची लाखों पाये ! एक रात लंदनमें बसेरा करके हम लोग दूसरे दिन तड़के-तड़के वहाँसे चल दिये और कोपेनहेगेन होते हुए रेलगाड़ीसे डेनमार्कमें एल्सीनोरके इण्टरनेशनल पीपुल्स कालेज (अन्ताराष्ट्रिय लोक-विद्यालय) में जा उतरे।

यहाँकी धरतीकी छटा कुछ निराली ही है। यों तो डेनमार्कके तीनों ओर नीला समुद्र लहरें लेता ही रहता है, पर उसके भीतर भी धरती-पानीकी कुछ ऐसी अनोखी आँख-मिचौनी होती रहती है कि कहीं धरतीकी गोदमें पानी चुहलें करता है तो कहीं पानीकी

गोदमें धरती दुबकी फिरती है। यहाँकी धरती कुछ कम ऊबड़-खाबड़ नहीं है, पर वाह रे दो पैरके जानवर (मनुष्य)! उसे भी तोड़-ताड़कर उसने ऐसा मुट्ठीमें कर लिया है कि उसे चाँदी उगलनेको कहो तो सोना उगलने लगे।

यहाँ धूपकी कमी रह-रहकर खलती है। कहाँ तो हमारा सलोना भारत, जहाँ बारह महीने खुली धूप और कहाँ डेनमार्क, जहाँ धूप भी नयी लजीली दुलहन बनी बादलोंकी ओटमें दिन-रात छिपी बैठी रहती है कि कहीं किसीको डीठ न लग जाय। कभी बरस-खाले घड़ी-दो-घड़ीको निकली भी तो बस छुई-मुई-सी झलक लझकाकर घूँघट डाल लेती है। पर उतनेमें ही सारा डेनमार्क अपना सब काम-धाम छोड़कर बिना पूछे छुट्टी मनाने बैठ जाता है। यहाँ जब देखिये तब दलके दल बादल अपने घूमरे कन्धोंपर पानीके घड़े उठाये ऊपर खड़े रहते हैं और जब मनमें आता है, तभी हर-हर-गंगे कर डालते हैं। पर यह मानना पड़ेगा कि वहाँके बादल हैं बड़े समझदार और भले, तभी तो वे कड़कते-गरजते नहीं, डराते-धमकाते नहीं, मान-मनौती नहीं कराते और मूसलाधार बरसते नहीं। दिन-रात रिमझिम-रिमझिम, हल्की-फुल्की फुहारोंसे छिड़काव करते हुए वहाँकी धरतीमें हरियाली बसाये रखते हैं।

मैं तो समझता था कि यहाँ भी लू चल रही होगी। काशीसे कुछ उन्नीस बीस फेर होगा। पर यहाँ आते ही देखता क्या हूँ कि जिस वसंतको हम लोग अपने यहाँ चैतमें ही नारियल-सुपारी थमा चुके वह यहाँ डेनमार्कमें मूँछोंपर ताव दिये जमा बैठा है। जिधर आँख उठाकर देखिये उधर ही ढेरके ढेर लाल, पीले और उजले फूल गुच्छोंमें लटकते हुए आँखें फेर तो लें। पर यहाँके फूल आजकलके उन साथियों-जैसे है जिनमें रंग-रूप, बनाव-सिंगार, चटक-मटक और तड़क-भड़क तो बहुत है, पर गंधके नाम जय सियाराम ही समझिये।

आजकलके दोस्त क्या, गोया कि हैं कागजके फूल।
देखनेको खुशनुमा, बूए-वफ़ा कुछ भी नहीं॥

फिर भी दो-चार फूल तो ऐसे निकल ही आते हैं जो बयारके पंखोंपर अपनी भीनी महक उड़ाकर थोड़ा-बहुत चारों ओर गमक ही जाते हैं। इन फूलोंके साथ जब रंग-बिरंगे कपड़ोंमें सजी हुई मदभरी नवेलियाँ और नन्हें-मुन्ने बच्चे अपने फूलों जैसे प्यारे मुखड़े लेकर हँसते-खेलते, उछलते-कूदते, किलकते-फुदकते, नाचते-थिरकते, हा-हा-ही-ही करते, तितलियों-की आन बान लेकर इधरसे उधर उड़ते और फिरकी बने घूमते-फिरते हैं तो धरतीके सुहावने-पनकी रही-सही कमी भी पूरी हो जाती है। बरसानेका फाग आँखोंके आगे बरसने लगता है!

यहाँके लोगोंको फूल-पत्तियोंका इतना चस्का है कि घरमें, छतपर, खिड़कीपर, छज्जेपर, लटकन-जालीमें, फूलदानमें, जिधर देखिये बस फूल और पत्ते, फूल और पत्ते, यहाँतक कि भीतरकी भीतोंपर मढ़े हुए कागजोंपर भी आपको वही दिखायी देगा, फूल और पत्ते। आप कहीं किसीके यहाँ पहुँचभर जाइये, बस आपका बैठा हुआ मन झट उछलकर नाचने न लगे तो नाम बदल दीजिये।

यहाँवालोंमें काशीवाली मस्ती तो नहीं है, फिर भी अपने-अपनेमें सभी मस्त रहते हैं। यहाँ कोई यह नहीं सोचता कि कल क्या होगा, कैसे बीतेगी? बस खाओ, पीओ, रागरंग

मनाओ, कलकी उलझनमें घुल-घुलकर न मरो, न मरने दो। बस इसी धुनमें सब मस्त रहते हैं। हमारे यहाँ तो पचपन बरसके हुए नहीं कि उन्हें नारियल-सुपारी मिली नहीं। पर यहाँ तो सत्तर बरसके प्रौढ़ भी ऐसे लाल दिखायी पड़ते हैं मानो अभी सगाई किये चले आ रहे हों। हमारे यहाँ तो लोग बुढ़ापेके लिए, लड़के बच्चोंके लिए, पढ़ाई-लिखाईके लिए, ब्याह-गौनेके लिए और न जाने किन-किन कामोंके लिए कौड़ी-कौड़ी जोड़ते मर जाते हैं, फिर भी लाखमें कोई एक निकलता है जो कहे कि मेरी साध पूरी हुई, मेरे दिन सुखसे कटे। पर यहाँ तो सारी चिन्ता बीमेवालोंके सिर मढ़ दी जाती है। बीमारीका बीमा, बेकारीका बीमा, घरका बीमा, मोटरका बीमा। बीबीको छोड़कर जिसका चाहे उसका बीमा करा लीजिये और बैठे चैनकी बंसी बजाइये। जहाँ आपका सिर भिन्नाया कि बीमेवाले पहुँचे डाक्टर लेकर। जहाँ काम छूटा कि बीमेवाले पहुँचे काम लेकर या काम न मिलनेतक पैसा लेकर। आपका घर गिरे, ढहे, जले तो आपकी बलासे। बीमेवाले अपने आप उसकी जाँच-पड़ताल करेंगे और जबतक दूसरा बन न जाय तबतक म्युनिसिपल्टी आपको घर ढूँढ़कर देगी। जहाँ बच्चा होनेको हुआ कि अस्पताल पहुँचा दीजिये और जच्चा-बच्चाकी सारी देख-रेख सरकारके मत्थे डाल दीजिये। बड़े होनेपर भी घरवालोंपर कोई बोझ नहीं। झट 'बूढ़ोंकी टेकरी' (ओल्ड मैन्स होम) में जा धमकिये। सरकार झख मारकर खाना-कपड़ा देगी, दवादारू करेगी और कहीं वहीं आखें मूँद गयीं तो ले जाकर बड़े अच्छे ढंगसे धरतीकी गोदमें लिटा भी आयेगी। आप चाहें तो अपने बच्चोंकी देखभाल और पढ़ाई-लिखाईका बोझ अपने सिर ले सकते हैं। नहीं तो उन्हें भी ठेलिये सरकारके मत्थे, क्योंकि बच्चोंको पढ़ानेका काम है सरकारका। अपढ़ कोई रह ही नहीं सकता। बताइये जब अपने सिर कोई झंझट ही नहीं है तो उन्हें क्या काले कुत्तेने काटा है कि बिना बातके अपने माथेपर सलवटोंका जाल फैलायें?

खुलि खेलौ संसारमें, बाँधि न सकै कोय।
घाट जगाती क्या करै, जौ सिर बोझ न होय॥

यहाँकी धरतीमें न कोयला है, न लोहा, पर खेती भी किसी सोनेकी खानसे कम नहीं है। यहाँ खेतीका अर्थ कोरा धरतीसे सिरफुड़ौवल करना नहीं है। गाय पालना भी यहाँ खेती ही है। यहाँकी गायें क्या हैं, पूरी कामधेनु हैं। देखिये तो जी खिल उठे। उन बड़ी-बड़ी, मोटी-तगड़ी, चितकबरी, पटनहियाँ गौओंके समान बिना डीलवाली और सपाट पीठवाली गौओंको देखकर ऐसा जी करता है कि इनके पैरोंमें लोट जाऊँ और याज्ञवल्क्य बनकर कह दूँ अपने चेलोंसे: 'हाँक ले चलो बेटा अपने गाँवको!' उनका बाँक (थनोंका घेरा) देखिये तो जान पड़े मानो दूधका मटका बाँधे घूम रही हों। थनोंके नीचे बाल्टी रख दीजिये और चुटकी बजाते-बजाते दुह लीजिये पन्द्रह सेर पक्का दूध, मानो थनोंमें दूधके नल लगे हों!

मेरी बात सुनकर तो आप हँस पड़ेंगे, पर सच मानिये यहाँके सूअर भी कुछ कम प्यारे नहीं होते। न तो ये हमारे यहाँके सूअरों जैसे बेढंगे होते, न उतने बेडौल। उनका रंग देखिये तो पका टमाटर और आगेसे पीछेतक ऐसे गोल जैसे पानी-भरा पखाल। कोई पहलवान भी थूथन थामे तो घुमाये न घूमे। और फिर कितने मुस्टंडे कि दस दिनका छौना भी दस पग

उठाकर ले चलना पड़े तो नानी याद आ जाय। बारह महीनेका पाठा सूअर दूरसे देखिये तो ऐसा लगे जैसे ऐरावतका बच्चा क्षीर-सागरमेंसे नहाये चला आ रहा हो। मैंने यहाँके एक साथीसे पूछा : 'क्यों भाई, ये गायें और ये सूअर किस चक्कीका पिसा खाते हैं ?' वह हँसकर बोला : 'इन्हें हम लोग गेहूँ, जौ, मटर, सेब और चुकन्दर खिलाते हैं और सूअरोंको तो भर-पेट मक्खन निकाला हुआ दूध पिलाते हैं, तभी तो इनपर इतना मांस चढ़ता है। यह सुनकर मेरी ऊपरकी सांस ऊपर और नीचेकी नीचे रह गयी। कहाँ तो हमारे यहाँ आदमी तकको एक जून भरपेट खानेको नहीं मिल पाता, बच्चोंको देखने तकको दूध नहीं मिलता और कहाँ यहाँ सूअरतक सेब और चुकन्दर खाते हैं, कुण्डाभर दूध सड़प जाते हैं। अब मेरी समझमें आया कि यहाँकी गायें इतनी दुधार क्यों हैं और सूअरोंपर इतनी चर्बी क्यों चढ़ी है।

यों तो खाने-पीनेमें यहाँ बड़ा पैसा निकल जाता है और रहन-सहन भी कुछ कम महँगा नहीं, पर दूध तो समझिये कौड़ियोंके माल बिकता है, कुल चार आने सेर, और वह भी कैसा कि घड़ीभर चूल्हेंपर चढ़ा रखिये और पावभर वह मोटी-चिकनी मलाई उतार लीजिये कि जीभपर रखते ही सरककर पेटमें जा समाये।

मक्खन बेच-बेचकर ही यहाँके छोटे-छोटे किसान भी बड़े तावसे बढ़िया-बढ़िया घरोंमें रहते हैं, भड़कीली मोटरोंपर घूमते हैं, ठाटका खाते-पहनते हैं, ठण्डे-गरम फुहारोंमें नहाते हैं, बिजलीके चूल्होंपर रसोई पकाते हैं, छुट्टीके समय रेडियो सुनते हैं और टेलिफोनसे अपने संगी-साथियों या काम-काजवालोंसे मेलजोल बनाये रखते हैं। हमारे यहाँ किसीके पास इतनी माया हो जाय तो धरतीपर पैर न पड़े। पर इतना बढ़िया खान-पान और रहन-सहन होनेपर भी इन लोगोंमें आलसका नाम नहीं। दिन निकला नहीं कि सब अपनी हँसिया-कुदाली लेकर निकल पड़े खेतोंकी देख-भालको। यहाँके लोग बड़ी-बड़ी बस्तियोंमें जाकर रहनेके बदले अपने खेतोंपर ही घर बनाकर रहते और चौबीस घण्टे अपनी खेती-बारी और ढोर-डंगरोंकी देख-भाल करते हैं। जुताईका बहुत-सा काम तो छोटे-बड़े या हाथके धरती-फोड़ (ट्रेक्टर)से ले लेते हैं, पर काम पड़ा तो घोड़ोंसे भी हल चलानेमें नहीं चूकते ! और घोड़े भी वह जबरजंग कि मुँह उठाकर एकबार हिनहिना दें तो खड़ा आदमी धरती चाटने लगे। खेती-बारीमें इतने जी-जानसे लिपटनेसे ही अकाल इनके पासतक नहीं फटकने पाता। खेत सोना उगलते हैं, गायें कामधेनु बनी घूमती हैं और सुअर ऐसे टंच बने फिरते हैं कि कहीं धरतीको कोई हिरण्याक्ष लेकर फिर पातालमें पैठ जाय तो थूथन डालकर पूरी धरतीको ऊपर उठाये लिये चले आयें।

यहाँके चालीस लाख लोगोंमें छः लाख तो खेतीका ही धन्धा करते हैं। हम लोग कहनेको तो कह देते हैं—"उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान", पर हमारा भोला किसान भी चाहता यही है कि मेरा बेटा कहीं जाकर नौकर हो जाय। पर यहाँ बस चले तो सभी हल संभाल लें। यों देखा जाय तो यहाँ करोड़पति कोई भी नहीं है, पर ऐसे भरभुखे भी नहीं है कि घर-घर जाकर हाथ पसारते फिरे। हलवाहे, पल्लेदार और छोटे-मोटे काम करनेवाले कामकर भी कुछ नहीं तो छः-सात सौ रुपया महीना फटकार ही लेते

हैं और जब निकलते हैं तो मूँछोंपर ताव देकर (भले ही मूँछें न रखते हों)। नाई या धोबी भी कामपर निकलेगा तो अपनी मोटरपर चढ़कर ही निकलेगा।

यह न समझिये कि ये लोग दिनभर खटते रहते हैं। नहीं, बस जितनी देर काम करना होता है, जमकर काम किया। फिर घर आये, कपड़े बदले और छैल-चिकनियाँ बनकर अपनी संगिनीके हाथमें हाथ डाले किसी फुलवारीमें घूमने निकल गये।

यहाँ ब्याहका चलन वैसा ही है जैसा सारे यूरोप में। पहले देखा-देखी, फिर मेल-जोल, तब घूमना-फिरना और मन मिलनेपर एक दिन धूमधामसे गिरजाघरमें दोनोंका गठबंधन। पर ऐसे आपसके जोड़े हुए ब्याह बहुत फलते नहीं दिखायी देते। थोड़े ही दिनोंमें बात-बातपर तुनकना, बिगड़ना, उलझना, झगड़ना होने लगता है और एक दिन जिस घरमें दोनों साथ मिलकर घुसे थे उसी घरमें दोनों अलग हो जाते हैं और नया साथी या नयी साथिन ढूँढ़ने लगते हैं। पहले तो ये, लोग बाहरी रंग-रूप और टीमटामपर दीयेके फतिंगे बन जाते हैं, पर जब रंग उतरने लगता है, दोनों एक दूसरेको समझने-बूझने लगते हैं, रूप ढलने लगता है तो दोनों ही एक दूसरेके लिए दूधकी मक्खी बन जाते हैं। यहाँके लोग भी इस ढंगके गठबन्धनसे ऊब तो चले हैं, पर अब वह कहावत हो गयी है कि बाबाजी तो कम्बल छोड़ना चाहते हैं, पर कम्बल ही बाबाजीको नहीं रहा है। अब तो सुना हमारे यहाँ भी यह रोग जड़ पकड़ने लगा है। भगवान् ही बचायें तो बचें। इतना सब देख-सुनकर भी आँखें न खुलीं तो कुछ दिन ही बुरे समझिये !

कृपालु लेखकोंसे—

'श्रीकृष्ण-सन्देश' अबतक जो वाङ्मयीन गौरव प्राप्त करता आ रहा है, वह मात्र आप विद्वान् लेखकोंकी कृपाका ही फल है। हम चाहते हैं कि इसका यह गौरव और भी वृद्धिगत हो। अतएव हम अपने कृपालु, उदारचेता विज्ञ लेखकोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे हमें साहित्यिक, दार्शनिक वैज्ञानिक, स्वस्थ राजनैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक, ऐतिहासिक, नवशोधात्मक, तुलनात्मक सभी प्रकारके लेख, निबन्ध, ललितनिबन्ध, स्वस्थ चारित्र्यवर्धक कहानियाँ, सरस-प्रभावशाली कविता आदिकी पठनीय स्वाध्यायसामग्रीसे पूर्ण सहयोग देते रहें। भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश किसी विषय (वस्तु)-विशेष, स्थान-विशेष या काल-विशेषसे सीमित नहीं रहता। वह सार्वविषयक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक होता है। जिससे विश्वका शाश्वत कल्याण हो, वह सारा 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के अन्तर्गत आता है।

लेखादि भेजनेका पता :

सम्पादक : 'श्रीकृष्ण-सन्देश'

के० ३०/४० घासीटोला, वाराणसी

वसन्त-पञ्चमी : आनन्द-विनोदमय उत्सव

श्री 'अङ्गार'

भगवान्‌ने जहाँ अपनी विभूतियोंके वर्णन-प्रसंगमें १२ महीनोंमें मार्गशीर्ष मासको 'विभूति' बताया, वहीं ६ ऋतुओंमें वसन्तको अपनी विभूतियोंमें सम्मान्य स्थान दिया। वैसे ऐतिहासिक दृष्टिसे कहा जाता है कि सर्वप्रथम मार्गशीर्षसे वर्षारम्भ होता था और उस समय ऋतु वसन्त ही थी। हम इसकी छानबीनमें अधिक न पड़ें तो भी यह कहा जा सकता है कि इस ऋतुमें उपलब्ध सभी लौकिक-अलौकिक उपादानोंको जाँचनेपर वसन्तऋतुका माहात्म्य सुस्पष्ट हो जाता है। संसारका बीज जहाँ काम बताया है, वहीं उसका सच्चा सहयोगी सखा कहा गया है वसन्तको। शरदकी शुभ्रतासे सम्पन्न धरित्री इस ऋतुमें पीतिमाके रंगसे सराबोर रंग जाती है। वैज्ञानिक जानते हैं कि पीला रंग किसी रंगसे विरोध नहीं रखता, सब रंगोंमें रंग जाता है। इसीलिए पीतिमाकी प्रतिष्ठा यह वसन्तऋतु भी जहाँ अपनेमें मदन-महोत्सव, होली जैसा ऋतुराजके स्वागतका पावनपर्व प्रस्तुत करती है वहीं उस ऋतुराजके सखा मदनको दग्ध करनेवाले त्रिपुरारी शङ्कर भगवान्‌का महा-शिवरात्रि-महोत्सव भी मनाती है। मालूम पड़ता है, वसन्त और सन्तसे निकटका सम्बन्ध हो। तभी यहाँ परस्पर विरुद्ध ये बातें दीखती हैं। सम्पूर्ण संसारको सर्वविध लौकिक-पारलौकिक अभ्युदय-निःश्रेयस् दिलानेवाले साक्षात् देव अग्निनारायणके अग्निहोत्रके लिए ब्राह्मणोंको यही वसन्तकाल आधान-काल बताया है और उपनयन जैसा ब्रह्मकर्माधिकारिताका संस्कार भी इसी ऋतुमें होता है। इस ऋतुमें उपभोगके सभी साधन अपने चरम उत्कर्षको प्राप्त होते हैं। अतएव यह वसन्तऋतु निर्विशेष भावसे सर्वसाधारणके लिए समादरणीय होती है।

साहित्यिकोंकी तो बात ही निराली है। वे वसन्तपर अपने पञ्चप्राणोंकी आरती उतारकर चढ़ा देते हैं। सरसोंके फूल, आम्रकी मदभरी मञ्जरी और उसे प्राशन करनेवाली कोयलकी पञ्चमध्वनि काकली एकबार निस्त्रैगुण्य-पथपर विचरनेवालोंको भी चकल्लसमें डाल देती है। इस ऋतुकी यही शक्ति देख देवोंने परम वीतराग भोलेबाबाको डिगानेके लिए वसन्तको दूत बनाया और वे अपने यत्नमें पूर्ण सफल रहे। वसन्तका यह वर्णन स्वतन्त्र लेखका विषय है। किन्तु यहाँ उस ऋतुके आरम्भकी तिथिको लक्ष्यकर कुछ शब्द प्रस्तावके रूपमें प्रस्तुत किये गये।

इस ऋतुराज वसन्तका आरंभ माघ शुक्लकी पञ्चमीसे होता है और इसीलिए इसे 'वसन्तपञ्चमी' कहा जाता है यह तिथि पूरे पूर्वाह्णमें हो तो दूसरे दिन, अन्यथा पूर्वदिन ही मनानेका शास्त्रोंमें विधान है। वैसे इसे 'श्रीपञ्चमी' भी कहते हैं और शरद ऋतुके शारदीय सरस्वती-शयनके अनध्याय जैसा इस दिन भी छात्र अनध्याय रखकर विद्याधिदेवता सरस्वतीका भव्य पूजन, उत्सव मनाते हैं। वैसे सारे भारतमें यह आयोजन होता है, पर बंगाल और बिहारमें इसका रूप निखरा पाया जाता है। सरस्वती-पूजनके साथ वैदिक-पूजन भी इस दिन होता है।

इसी वसन्तपञ्चमीके दिनसे लोकगीतोंमें होरी और धमारका गान आरम्भ होता है जो प्रायः डेढ़ मास चलता है। इस दिन रति एवं कामदेवका मञ्जरीयुक्त आम्रवृक्षके नीचे सपत्नीक पूजन करनेका विधान है। शास्त्रोंमें इस दिन विष्णु भगवान्‌के पूजनका विधान है। हेमाद्रि कहते हैं : माघे मासि सिते पक्षे पञ्चम्यां पूजयेद्धरिम्। मथुरामण्डल और व्रजका तो यह महान् उत्सव है। कथा भी देखनेपर इस उत्सवमें भगवान् कृष्णकी ही प्रधानता सिद्ध होती है।

कुछ लोग यह शंका करते हैं कि वसन्तका आरम्भ चैत्रमास या सूर्यके मेषराशिपर प्रवेशसे होता है। किन्तु इस दिन वसन्तारम्भका कारण रहस्यमय है। बात यह है कि प्रत्येक ऋतुका ४० दिनोंका गर्भकाल होता है। चान्द्रमासके मानसे वैशाख कृष्ण प्रतिपद् वसन्त-रम्भका दिन माना जाय, तो उसके पूरे ४० दिन पूर्वका यह गर्भकाल बन आता है। प्रत्यक्ष भी देखा जाता है कि वसन्तका 'कुसुमाकरत्व' (फूलोंका खान होना) वसन्तपञ्चमीसे ही आरम्भ होता है। आमोंमें बौर आ जाते हैं। गुलाब, मालती खिलने लगती हैं। भौरोंका गुञ्जार और कोयलोंका आमोंपर कुहूरव आरंभ हो जाता है। जौ, गेहूँमें बालें भी इसी समय आने लगती हैं। अतः इसका वसन्तारंभप्रयुक्त 'वसन्तपञ्चमी' नाम सर्वथा सार्थक है।

इस वसन्तऋतुमें प्रकृति स्वभावतः प्रमुदित होती-सी प्रतीत होती है। सब वृक्षोंमें नवीन पत्र-पुष्प आने लगते हैं। पुरानी वस्तुएँ नवीन होने लगती हैं। न अत्यन्त शीत रहता और न अत्यन्त उष्ण। मनुष्योंमें स्वतः ही विविध विहारोंकी इच्छा जग उठती है। अतएव रति एवं कामपूजाका विधान प्राचीन वाङ्मयमें दीखता है, जिसकी एक झलक श्रीहर्षकी 'रत्नावली' नाटिकाके वसन्तोत्सव-वर्णनमें मिलती है। उपनयन और वेदाध्ययनारंभ भी इसी समय होता है; अतः वेदवाणीकी अधिष्ठात्री देवताके रूपमें विद्यादेवता सरस्वतीका पूजन होता है। जगत्‌के पालक भगवान् आनन्दमूर्ति प्रद्युम्नके पिता श्रीकृष्ण हैं तो उनके इस उत्सवके अधिदेवता होनेमें बात ही क्या है? यही कारण है कि आनन्द-विनोदमय इस उत्सवकी प्रधानता भगवान्‌की लीलाभूमि व्रजमें देखते ही बनती है। विष्णुधर्मोत्तरमें श्रीराधा-कृष्ण-युगल-पूजनका भव्य वर्णन है। कुल मिलाकर कहना पड़ता है कि वसन्तपञ्चमी प्रकृति और उससे बद्ध जीवोंके अन्तरका आनन्द-विनोदमय मधुर उभाड़ है।

•

नीति-वचनामृत

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः ।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ।।

नहि विसाद मन दीजिये है वामैं बड़ दोष ।
हनत पुरुषकौ खेद ज्यौं सिसुकौ भुजग सरोष ।।

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ।।

तजि उतसाह सुदीन जो सोक-विकल-उर-धाम ।
परत विपति वाके सदा बिगरत हैं सब काम ।।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाऽऽश्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ।।

ईस्वर जगमैं तहँ धर्म सदा थिर होइ ।
सत्य-मूल सब सत्य ते ऊँच नाहिं पद कोइ ।।

सूक्ति-सुधा

[कनकधारा-स्तव]

वाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ।।

वाहुओंके बीच वक्षमध्य मधुसूदनके
रत्नराज कौस्तुभ विराजमान है जहाँ,
हारावलि-सी जो हरिनीलमयी पाती छवि
दीख पड़ती है कोई और उपमा कहाँ ।
कामदायिनी जो भगवान्‌के लिए भी हुई
कौन कहे उसकी अमान महिमा महा,
कमलालयाकी वह मोहनी कटाक्षमाला
मेरे हित होवे मोदमंगलप्रदा यहाँ ।

•

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, ढुण्ढिराज, वाराणसी-१ में मुद्रित एवं प्रकाशित